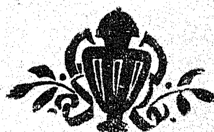
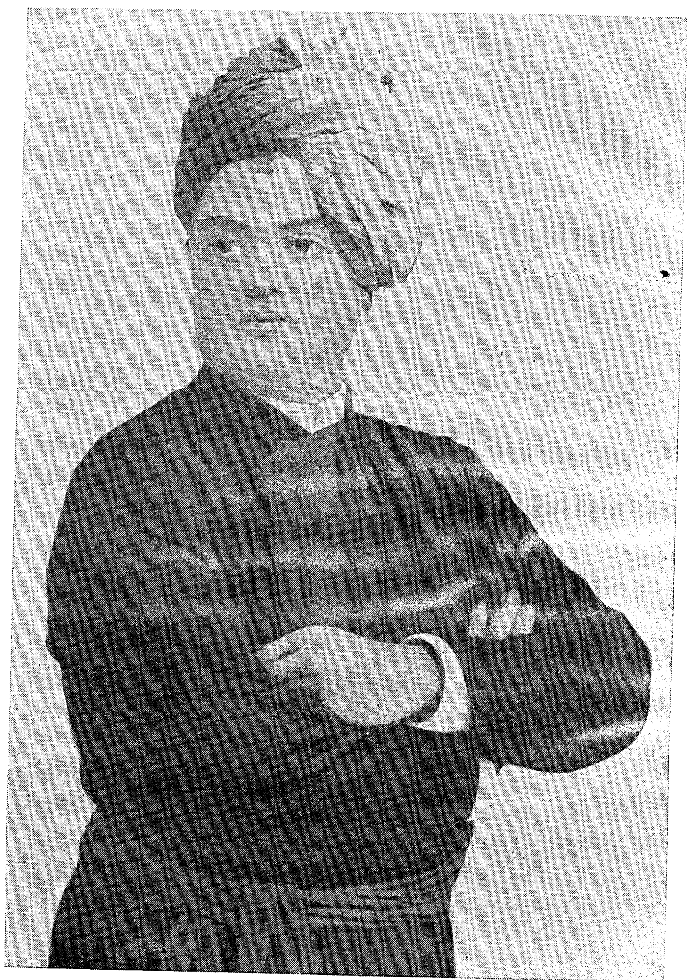


स्वामी विवेकानन्द



संस्थापक
स्वर्गीय पं० ओङ्कारनाथ वाजपेयी



स्वामी विवेकानन्द

The Onkar Press, Allahabad.

ओंकार आदर्श चरितमाला का प्रथम पुष्प।

श्री स्वामी विवेकानन्द

(जीवनी और राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक विचारों का संग्रह)

" उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत "

---o---

लेखक

पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा

सम्पादक

स्वर्गीय पं० ओंकारनाथ वाजपेयी

" Our youngmen must be strong first of all, Religion will come afterwards. Be strong, my young friends; that is my advice to you. You will be nearer to Heaven through foot-ball than through the study of the Gita ....you will understand Gita better with your biceps, your muscles a little stronger, you will understand the mighty genius and the mighty strength of Krishna better with a little of strong blood in you. You will understand the Upanishads better and the glory of Atman, when your body stands firm upon your feet and you feel yourselves as men."—*Swami Vivekananda.*

चतुर्थ वार] [मूल्य ।=)

समर्पण

प्यारे नवयुवको !

आज धुलेण्डी है, होली का हुल्लड़ चारो ओर मच रहा है। स्थान पर खुराफ़ात; वाहियात तथा रङ्ग गुलाल की धूम मच रही है। प्यारे मित्रो ! क्या तुम भी इसी प्रवाह में बहना चाहते हो ? इस प्रश्न के करने से मेरा यह मतलब नहीं है कि तुम होली मत खेलो। नहीं नहीं, तुम होली खेलो और ज़रुर खेलो, भले ही रङ्ग की पिचकारी छोड़ो। पर कैसे रङ्ग की पिचकारी, कैसी होली इसका भी ध्यान रखो। ऐसी होली खेलो, ऐसे रङ्ग की पिचकारी छोड़ो जिससे अब तक तुम्हें जो यन्त्रणायें हो ली हैं दूर हों। अपने को तथा अपने इष्ट मित्रों को ज्ञान की पिचकारी का निशाना बनाओ, जिससे अज्ञान दूर हो बस यही सोच कर आज मैं तुम्हें अपना निशाना बनाता हूं ज़रा सम्हल जाओ। स्वामी विवेकानन्दजी के उपदेशों से काट छांट कर इस पिचकारी में जो रङ्ग भरा है बस वही रङ्ग तुम पर छोड़ता हूं। लीजिये, इस रङ्ग को अपने हृदय में रङ्ग लीजियेगा, वृद्धा भारत-माता की सेवा सुश्रूषा से विमुख न हूजियेगा। उनकी सारी आशा-लता तुम्हीं पर है। वह तुम्हारी ही बाट जोह रही है उसे निराश मत करो जननी की सच्ची सन्तान बनो। "जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का निरन्तर जाप करते रहो।

—तुम्हारा भाई—नन्द०

निवेदन

(प्रथम संस्करण की भूमिका)

श्री स्वामी विवेकानन्दजी का नाम पाठकों से अविदित नहीं है। यह वही स्वामी विवेकानन्द हैं जिन्होंने अमेरिका जैसे प्रकृतिवादी देश में वेदान्त की ध्वजा फहराने के अतिरिक्त, भारतीय राष्ट्र-निर्माण तथा नव्य-भारत के चरित्र गठने में भाग लिया था। भारतवर्ष में जो जागृति हो रही है विशेषतः बङ्गाल में, उसमें स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों का भी कुछ प्रभाव मानना पड़ेगा। यही सोच कर स्वामी जी की जीवनी और उनके उपदेशों का अति संक्षिप्त सारांश हिन्दी पाठकों की सेवा में अर्पित किया जाता है। कहा नहीं जा सकता कि पाठकों को यह उपहार पसन्द आवेगा अथवा नहीं।

अङ्गरेज़ी भाषा में स्वामी जी के उपदेशों, पत्रों तथा अन्य लेखों का कई भागों में क्रमबद्ध अच्छा संग्रह है। भारतवर्ष की अन्यान्य भाषाओं में उनके उपदेशों का संग्रह होगया है; पर खेद है अभी तक हिन्दी इनसे खाली है। हिन्दी भाषा के साधारण पाठक जो अङ्गरेजी तथा अन्य भाषाओं को नहीं जानते हैं, वे स्वामी विवेकानन्द के विचारों से अभी तक अपरिचित हैं। अवश्य ही उनकी वक्तृताओं में से किसी २ का अनुवाद कभी "सरस्वती" तथा अन्य मासिक पत्रिकाओं में निकला है और स्वामी जी के पत्र व्यवहार के प्रथम खण्ड का हिन्दी अनुवाद हुआ है, तथापि स्वामी जी के राष्ट्रीय

समाजिक तथा धार्मिक विचारों का शृङ्खलाबद्ध संग्रह नहीं हुआ है, जिसकी बड़ी आवश्यकता है यह विचार कर मैंने स्वामी जी के समस्त उपदेश और सम्पूर्ण विचार तो नहीं, पर हां उनकी संक्षिप्त जीवनी और उनके राष्ट्रीय, सामाजिक तथा धार्मिक विचारों का अति संक्षिप्त संग्रह इस छोटी सी पुस्तिका में कर दिया है। परन्तु यह निश्चय है कि मुझे इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई है। क्योंकि प्रथम तो स्वामी जी के उपदेश अंगरेज़ी भाषा में हैं। मैं अंगरेजी का पण्डित नहीं हूं। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना बड़ा कठिन है, विशषतः अंगरेज़ी से अनुवाद करते समय तो पग पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अवश्य ही स्वामी जी की भाषा बड़ी सरल, रसीली और हृदयग्राही है पर जैसी अङ्गरेज़ी उनकी सरल है वैसे ही उनके भाव बड़े कठिन हैं, भाषा बड़ी जोशीली है। अनुवाद में उनके वैसे ही भाव और भाषा का जोश रहना असम्भव सा प्रतीत होता है परन्तु मैंने इसकी चेष्टा अवश्य की है। कहीं उनके शब्दों का ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया है। कहीं उनके भावों को अपनी भाषा में लिखा है और कहीं उनके वाक्यों को तोड़ मरोड़ कर कुछ शब्द अपनी ओर से घटा बढ़ा भी दिये हैं।

इसके अतिरिक्त एक और भी भय है कि मैंने उनके इतने विचार समूह में से अति संक्षिप्त विचारों को संग्रह करने की चेष्टा की है जिससे अनेक त्रुटियां रहने की आशङ्का है। आशा है, सज्जन-जन इसका विचार करके कि जब तक कोई विद्वान् ऐसे कार्यों में हाथ डालने का प्रयत्न न करे तब तक

कुछ न करने से कुछ करना अच्छा है, मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

हमारे देश में आज कल मत भेद और सिद्धान्त विरोध का रोग प्रबल हो रहा है। इस रोग ने हमको यहां तक जकड़ डाला है कि चाहे जैसा कोई विद्वान् क्यों न हो पर मत भेद के कारण उसके विचारों का प्रचार नहीं करना चाहते हैं अन्ध भक्ति की भी हम लोगों के हृदय पर ऐसी छाप बैठ गई हैं कि अन्य मतावलम्बियों के गुणों के परखने में अपने हृदय की सङ्कीर्णता का परिचय दिया करते हैं। स्मरण रखना चाहिये हमारे ऋषि मुनियोंका कथन है "शत्रोर पिगुणा वाच्याः दोषा वाच्या गुरोरपि,, अर्थात् शत्रुओं के भी गुणों का बखान करना चाहिये और गुरु के भी दोषों का बिना किसी सङ्कोच के वर्णन करना चाहिये। पर अफसोस! आज सिद्धान्त विरोध और मतभेद ने हमारे हृदय से ऋषि मुनियों के इस वाक्य को दूर कर दिया है। स्मरण रखना चाहिये जब तक संसार है तब तक लाखों चेष्टाएं करने पर भी मत भेद और सिद्धान्त विरोध दूर नहीँ हो सकता है और मेरे विचार में इसका दूर न होना ही अच्छा है। मत भेद और सिद्धान्त विरोध कोई बुरी चीज नहीं प्रत्युत अच्छी है। मत भेद और सिद्धान्त विरोध जीवनका लक्षण है। जब तक मतभेद और सिद्धान्त विरोध न हो तब तक किसी विषय का निर्णय होना कठिन है। क्या देखते नहीं स्त्री-पुरुष और बाप-बेटे तक में बहुत सी घरेलू बातों के सम्बन्ध में मत भेद रहता है तब धार्मिक सामाजिक एवम राष्ट्रीय जैसे भारी विषयों में मतभेद होना स्वाभाविक ही है और इन विषयों पर जितना मतभेद

हो, उस पर जितना विचार किया जाय उतनाही अच्छा है। इसके लिये इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है जितने महा पुरुष हमारे यहां हुए हैं उनके विचारों पर विचार किया जाय। मेरी इच्छा इस कार्य के बीड़ा उठाने की बहुत दिनों से होरही है परन्तु कार्य के साधनों के अभाव से इच्छा २ ही रही आई है उसकी पूर्ति नहीं हो सकी है इच्छा के वशी भूत होकर ही मैंने पहले पहिल सन् १९०५ में इस पुस्तक के थोड़े से अंश को बम्बई के ज्ञान सागर छापेखाने से जो मासिक पत्र "ज्ञान सागर" निकलता था, उसके दो अंकों में लिखा था। पर पीछे कई कारणों से मेरा उस पत्र से सम्बन्ध नहीं रहा। बस यह निबन्ध भी छपना बन्द होगया। कई वर्ष पीछे जब सन् १९११ में मैं "बिहार बन्धु" से सम्बन्ध परित्याग करके अपनी जन्म भूमि मथुरा चला आया था तब मैंने इस निबन्ध का एक अंश (स्वामी विवेकानन्द की जीवनी मात्र) ज्वालापुर महाविद्यालय से प्रकाशित होनेवाले भारतोदय नामक मासिक पत्र चतुर्थ वर्ष के चतुर्थ खण्ड में लिखा था। परन्तु कई कामों में व्यस्त रहने के कारण यह निबन्ध अधूरा रह गया। अब कई मित्रों के अनुरोध से पूरा किया है।

यदि हिन्दी रसिकों ने इसको कुछ भी अपनाया तो मैं शीघ्र ही भारतवर्ष तथा अन्य देशों के महापुरुषों के कार्य तथा विचारों को प्रकाशित करने की चेष्टा करूंगा।

उपसंहार में फिर एक बार यही निवेदन है कि जो कुछ भूल चूक हुई हो उसको सहृदय पाठक क्षमा करें।

मुझे इस निबन्ध के लिखने में निम्न पुस्तकों से सहायता प्राप्त हुई है जिनका मैं विशेष आभारी हूं।

(१) From Columbo to Almora (Second edition).
(२) Swami Vivekananda (Speeches and writings, G. A. Nateson & Co., Madras).
(३) Swami Vivekananda, His life and teachings (G. A. Nateson & Co., Madras).
(४) स्वामी विवेकानन्द का पत्र व्यवहार प्रथम खण्ड (हिन्दी)
(५) स्वामी विवेकानन्दना पत्रते सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय
(६) Indian Nation Builders (Ganesh & Co., Madras.
(७) उद्बोधन (बङ्ग भाषा के पत्र के कुछ अङ्क)
(८) प्रबुद्ध भारत (अङ्गरेज़ी भाषा के मासिक पत्र के सन् १९०३-४ के कुछ अङ्क)
(९) कर्मयोग (हिन्दी अनुवाद)

चैत्रकृष्ण पञ्चमी
मंगलवार सं० १९६९

निवेदक
नन्द०
दिल्ली

प्रिय पाठकों ! मुझे बड़ा हर्ष है कि आपने आशा से अधिक इस पुस्तक का आदर किया है। थोड़े ही समय में इसके तीन संस्करण निकल गये। पं० नन्दकुमारदेवशर्मा ने ओंकार आदर्श-चरित्र माला में कई जीवन चरित और लिखे हैं। आशा है उन्हे भी आप पढ़कर लेखक और प्रकाशक का उत्साह बढ़ावेंगे।

निवेदक
(स्व०)ओंकार नाथ वाजपेयी

आश्विन शुक्ल
८ बुद्धवार
सं० १९७३

चतुर्थ संस्करण की भूमिका

परम पिता जगदीश्वर को अनेक धन्यवाद है कि मेरे प्रेमी पाठकों ने आशा से अधिक इस पुस्तक को अपनाया है। थोड़े ही समय में इस पुस्तक के चार संस्करण हो गये हैं। पहले तीन संस्करणों में छापे आदि की जो भूलें हो गई हैं, उनका तो इस बार संशोधन कर ही दिया गया है, किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ और भी नई बातें बढ़ा दी गई हैं।

इतिहास कार्यालय अलवर
(राजपूताना)
मार्ग शिर शु० ३ सं० ७५ ई०

निवेदक
नन्दकुमारदेव शर्म्मा

स्वामी विवेकानन्द की जीवनी और उनके विचार



प्रथम परिच्छेद।

प्रस्तावना।

भारतवर्ष ही में नहीं बल्कि संसार के अन्य देशों के इतिहासों से भी यह ज्ञात होता है कि समय समय पर ऐसे अनेक विद्वान् महात्मा और योगी जन जन्म लेते रहते हैं, जो अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से जन समाज के समाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विचारों में हलचल पैदा कर देते हैं। भारतवर्ष के विषय में यह अलौकिक बात है कि इस देश का कोई भी युग ऐसे महापुरुषों से ख़ाली नहीं जाता है। स्वामी विवेकानन्द भी भारतमाता के उन सपूतों में से एक थे, जिन्होंने वर्त्तमान और गत शताब्दियों में भारतमाता की सन्तानों के विचार सुधारने और राष्ट्र-निर्माण में भाग लिया था।

वंश परिचय, बाल्यकाल और छात्रावस्था ।

आज जिस बङ्गाल ने अपने राजनैतिक जीवन से समस्त भारतवर्ष में नवीन युग उपस्थित कर दिया है उस बङ्गाल को ही स्वामी विवेकानन्द की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त हुआ है। जो बङ्गभूमि, गत दो शताब्दियों में राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशव चन्द्र सेन, द्वारकानाथ विद्याभूषण, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र, राय दीनबन्धु मित्र, बङ्किम चन्द्र चटर्जी, कृष्णदास पाल, कृष्ण मोहन बनर्जी, माईकेल मधुसूदन दत्तादि महानुभावों को उत्पन्न करने का अभिमान प्राप्त कर चुकी है, उसी बङ्गमाता को स्वामी विवेकानन्द के उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ९ वीं जनवरी सन् १८६२ को कलकत्ते के निकट किसी गांव में स्वामी जी का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था। वे एटर्नी-एट-ला (Aterny-at-Law) थे और कलकत्ता हाईकोर्ट में प्रेक्टिस (वकालत) करते थे। इनकी माता अभी तक जीवित थीं। उनकी स्मरण शक्ति के विषय में कहा जाता है कि इतनी तीव्र थी कि जिस गीत को वे एक बार सुन लेती थीं, उसको कभी नहीं भूलती थीं। भला जब माता

इतनी चतुर हो तब सन्तान क्यों न बुद्धिमान होगी? फ्रांस देश के प्रसिद्ध वीर नेपोलियन बोनापार्ट के इस कथन में अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि माता पर ही सन्तान के भले बुरे भावी आचरण निर्भर हैं। चाहे जिस महापुरुष के चरित्र अवलोकन कीजियेगा तो पता लगेगा कि उसकी माता के स्वभाव का उसके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। सो माता की प्रबलबुद्धि होने के कारण स्वामी विवेकानन्द का प्रतिभाशाली होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। स्वामी विवेकानन्द की बृद्धा माता के विचार कैसे थे? इसका पता केवल इस घटना से लगता है कि जिस समय उनके दूसरे पुत्र अर्थात् विवेकानन्द के सहोदर बाबू भूपेन्द्र नाथ को कलकत्ते के एक अख़बार में कुछ आपत्ति जनक लेख लिखने के कारण जेल कीसज़ा हुई थी उस समय उनकी माता तनिक भी बिचलित नहीं हुई। ऐसी बिपत्ति में भी अतुलनीय धैर्य का परिचय दिया। जब कुछ स्त्रियों ने उनके प्रति इस विपत्ति में समवेदना और सहानुभूति प्रकट की तब भी वे धैर्य्यच्युत नहीं हुई। एक स्त्री का बिशेषतया भारत-वर्षीय अबला का ऐसी विपत्ति में इस भांति धीरज रखना अत्यंत आश्चर्य दायक है। क्योंकि भारतवर्ष में अत्यन्तस्नेह की मात्रा बढ़ी हुई है। अस्तु जो कुछ हो, मेरे कहने का सारांश यही है कि बृद्धावस्था में जिसकी माता ऐसी

धैर्य्यवती हो उसके पुत्र से जितने अच्छे अच्छे कार्य परमात्मा करावे, उतने ही थोड़े हैं। इनके जन्म का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। संन्यासी होने पर पूर्वनाम बदल कर विवेकानन्द नाम रखा गया।

बालापन में स्वामी विवेकानन्द ने नरेन्द्रनाथ रहते समय ही अपनी अनुपम विचार-शक्ति, प्रखर बुद्धि और चमत्कारिक प्रतिभा से सब को चकित और स्तम्भित कर दिया था। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस लोकोक्ति के अनुसार छात्रावस्था में ही इन्होंने यूरोपियन दर्शन शास्त्र में अच्छी जानकारी प्राप्त करली थी। जब वे कालेज में पढ़ते थे तब ही उन्होंने हर्बर्ट स्पेन्सर के दार्शनिक विचारों की आलोचना की और अपनी वह आलोचना हर्बर्ट स्पेन्सर के पास भेज दी। महात्मा स्पेन्सर इनकी आलोचना देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सत्य के अनुसन्धान करने के लिये इनको उत्साहित किया।

गुरू से भेंट

सन १८८४ से १८८६

कालेज में अध्ययन करते समय यह नास्तिक हो गये थे। उस समय इनका ईश्वर, जीव इत्यादि पर कुछ विश्वास नहीं

रहा। उन दिनों बङ्गाल में ही नहीं सारे भारतवर्ष में धर्म विप्लव मच रहा था। बङ्गदेश में कृश्चियन मत की उत्ताल तरङ्गों को रोकने के लिये ब्रह्मसमाज की नींव पड़ चुकी थी। कृष्णमोहन बनर्जी, कालीचरण बनर्जी, माईकेल मधुसूदन दत्तादि जैसे विद्वान् भी प्रभु ईसा मसीह के शरणागत हो चुके थे। कहने को ब्रह्मसमाज क्रिश्चियन मत की उत्ताल तरङ्गों के रोकने को स्थापित हुआ था, परन्तु कुछ परिवर्तन रुप में उसके द्वारा कृश्चियन मत के लिये नयी सड़क बनने लग गई थी। जिसकी स्थिति अभी तक ज्यों की त्यों है। ब्रह्म-समाज के प्रवीण नायक, बाबू केशवचन्द्र सेन की वाक्यपटुता के प्रभाव से हिन्दुओं के धार्मिक विचार और विश्वास में परिवर्तन हो गया था। ऐसे कठिन धर्म विप्लव के समय में स्वामी विवेकानन्द भी ब्रह्मसमाज के विचारों की ओर झुक गये थे। परन्तु उनकी ब्रह्मसमाज से कुछ तृप्ति नहीं हुई। इस बीच में उन्होंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करली थी। और कानून की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, साथ ही अपने संशयों की निवृत्ति के लिये कितने ही व्यक्तियों के पास गये पर कहीं भी उनकी शङ्का का समाधान नहीं हुआ। एक दिन उनके पितृव्य (चाचा) जो राम कृष्ण परमहंस के शिष्य थे। उनको अपने साथ परमहंसजी के पास लेगये।

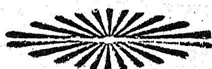
*महात्मा रामकृष्ण परमहंस एक पहुंचे हुए साधु थे। आज कल के कनफटे चिमटा हाथ में लिये, "दाता भला करे" कहने वाले साधुओं की तरह नहीं थे। जिस तरह मथुरा के प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती को स्वामी दयानन्द

श्री रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द के गुरू थे। स्वामी विवेकानन्द तथा उनके साथी श्री रामकृष्ण परमहंस को अवतार मानते हैं। परन्तु वास्तव में रामकृष्ण परमहंस ने कभी स्वयं अवतार होने का दावा नहीं किया था। सन् १९१० में अङ्गरेजी के प्रसिद्ध लेखक और ब्रह्मसमाज के प्रख्यात नायक पं० शिवनाथ शास्त्री एम० ए० ने माडर्न रिव्यू में "Men as I have seen" शीर्षक लेखावली लिखी थी जिसमें उन्होंने बङ्गाल के प्रसिद्ध पुरुषों के दर्शनों का उनके हृदय पर जो प्रभाव पड़ा था वह दिखलाया था उक्त लेखावली में उन्होंने उक्त परमहंस जी का भी वर्णन किया है जो नवम्बर सन् १९१० के माडर्न रिव्यू के अङ्क में छपा है। एक बार उक्त परम हंस जी की पीड़तावस्था में पंडित शिवनाथ शास्त्री उनसे मिलने गये थे। तब तो उक्त शास्त्रीजी ने परमहंसजी से कहाः—

As there are many edition of a book so there have been many editions of God Almighty and your disciples are about to make you a new one. He too smiled and said:-Just fancy God Almighty dying of a cancer in the throat what great fools these fellows must be.—The Modern Review of November 1910. जिस भांति एक पुस्तक के कितने ही संस्करण होते हैं उसी भांति सर्व शक्तिमान जगदीश्वर के भी बहुत से संस्करण हुए हैं और अब आपके शिष्यवर्ग आप का नया संस्करण करने वाले हैं। इस पर परमहंसजी हंसे और कहाः—सोचो तो सही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर गले में फोड़ा होने के कारण मर रहा है ये मनुष्य कैसे मूर्ख हैं।

सरस्वती को देख कर, उनके द्वारा अष्टाध्यायी और महाभाष्य के भारतवर्ष में पठन पाठन की प्रणाली के प्रचार की आशा हुई थी वैसे ही श्री रामकृष्ण परमहंस को हमारे चरित्रनायक नरेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द) को देख कर यह आशा हुई कि इसके द्वारा मेरे सिद्धान्तों का प्रचार होगा। श्री रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्रनाथ दत्त को देखते ही पूछाः—"क्या तुम धर्म विषयक कुछ भजन गा सकते हो?" इसके उत्तर में नरेन्द्रनाथ दत्त ने कहाः—"हां गा सकता हूं"। पीछे उन्होंने दो तीन भजन अपनी स्वाभाविक मधुर ध्वनि में गाये। उनके भजन गाने से परमहंसजी बहुत प्रसन्न हुये। तब से वे परमहंसजी का सत्सङ्ग करने लगे और उनके शिष्य तथा वेदान्त मत के दृढ़ अनुयायी हो गये थे।

सन् १८८६ का वर्ष महात्मा रामकृष्ण परमहंस के शिष्यों के लिये ही नहीं किन्तु समस्त भारतवर्ष के लिये बुरा था उस वर्ष की १६वीं अगस्त को महात्मा रामकृष्ण परमहंस इस भारतमाता की गोद खाली कर गये। उनके शिष्य और भक्तों को उनकी वियोग वेदना सहन करनी पड़ी। परमहंसजी के देहान्त के कारण समस्त धर्मानुरागियों में शोक की ज्वाला प्रज्वलित हो गई थी।



गुरू स्मारक

उनके देहान्त हो जाने के पश्चात् उनकी ग्रेज्यूएट शिष्य मंडली को उनके वेदान्त सम्बन्धी विचारों के प्रचार करने की अपरिमित लालसा हुई। जिस युवावस्था में हतभाग्य इस देश के नवयुवकों को भोग विलास के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं है वहां रामकृष्ण परमहंस के नवयुवक शिष्यों ने अपनी तरुणावस्था का कुछ विचार न करके सांसारिक माया से मोह हटा लिया और अपने गुरू के उपदेशों के प्रचार करने की असीम चेष्टा करने लगे। उन्होंने अपने समस्त सुख चैन को लात मार कर हिन्दू जाति और भारतवर्ष की सेवा करने की प्रतिज्ञा की। परमहंस जी की ग्रेज्यूएट शिष्य-मंडली ने अपने पहले नाम बदल कर विवेकानन्द अभयानन्द ब्रह्मानन्द, रामकृष्णानन्द, अद्वयानन्द, त्रिगुणातीतानन्द, निरंजनानन्द आदि नवीन नाम धारण कर लिये। हमारे चरित्र नायक नरेन्द्रनाथ दत्त ने अपना नाम विवेकानन्द रखा।

अज्ञातवास और भारत भ्रमण

सन् १८८७–१८९२

सब से पहले स्वामी विवेकानन्द हिमालय शिखर पर छः वर्ष तक एकान्तवास में रहे। फिर वहांसे तिब्बत गये वहां

उन्हों ने बौद्धधर्म सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की । फिर भारतवर्ष में जहां तहां उपदेश करते रहे । इस भ्रमण में वह राजपूताने की प्रसिद्ध रियासत खेतड़ी गये थे। उस समय उन्होंने भारतवर्ष में दूर दूर तक भ्रमण किया था । मद्रास और पश्चिमी किनारे त्रिवेन्ड्रम तक गये थे । जहां कहीं गये, वहीं उन्हें नव्य भारत के निर्माण करने में सफलता प्राप्त हुई थी ।

अमेरिका यात्रा

किन्तु स्वामी विवेकानन्द के विकास होने का कारण शिकागो की रिलिजस पार्लियामेंट (धर्मसम्मेलन) थी * श्री

*शिकागो में स्वामी विवेकानन्द की सफलता सुनकर थियोसोफिकल सोसाईटी ने भी वाह वाह लूटनी चाही थी। यह अफ़वाह थी कि अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द को थियोसोफ़िकल सोसाईटी के कारण सफलता प्राप्त हुई। स्वयं स्वामी विवेकानन्द को मद्रास में इस चर्चा का अपनी वक्तृता में प्रतिवाद करना पड़ा था। वहां पर उन्हों ने "My plane of Campaign" शीर्षक जो वक्तृता दी थी उसमें स्पष्ट कहा था: 'There is another talk going round that the Theosophists helped the little achievements of mine in America and in England. I have to tell you in plain words that every bit of it is wrong, every bit of it is untrue. (From Columbo to Almora, page 117.) इसका भावार्थ यह है

रामनाथ के स्वर्गीय महाराज ने स्वामी जी को भेजने का खर्च उठाया था।

देशी भाषा के समाचार पत्रों में भेड़ियाधसान बहुत दिनों से चली आती है। हिन्दी भाषा के कई समाचार पत्र तो बिना किसी परिणाम को पहुंचे ही प्रबल विरोध करने को उतारू हो

कि चारों ओर यह चर्चा हो रही है कि इङ्गलेंड और अमेरिका में मुझे जो किंचित् मात्र सफलता प्राप्त हुई है उस में थियोसोफिस्टों ने सहायता दी है। इस विषय में मुझे आप लोगों से स्पष्ट कह देना है कि यह चर्चा नितान्त अशुद्ध और असत्य है। आगे इस वृत्तान्त से पता लगता है थियोसोफिस्टों ने स्वामी जी को सहायता देने के स्थान में उनके कामों में बाधा उपस्थित करने का प्रयत्न किया होगा। यद्यपि उन्हों ने थियोसोफ़िस्टों के विरोध करने के विषय में स्पष्ट नहीं कहा हैं तथापि आगे उन्होंने जो कुछ कहाहै, उससे ऐसी ध्वनि निकलती है। स्वामीजी के शब्द ये हैं:—

"We hear so much talk in this world of libral ideas and sympathy with differences of opinion, that is very good, but as a fact we find that one sympathises with another so long as the other believes in everything he has got to say, as soon as he dares to differ, that sympathy is gone, that love vanishes. There are other s again, who have their own axes to grind and if any arises in a country which prevents the grinding of their own axes, their hearts burn, any amount of hatred comes out, aud they do not know, what to do?

जाते हैं। जो पत्र सम्पादक काशी नरेश के विलायत यात्रा की व्यवस्था देने पर भी अपने पत्र में मिथ्या समाचार छाप देते हैं कि उन्होंने व्यवस्था नहीं दी और जब काशी नरेश की व्यवस्था उनकी सेवा में पहुंचाई जावे तो भी वे अपनी बात का प्रतिवाद छापना उचित नहीं समझते हैं तब ऐसे समाचार पत्रों से आशा ही क्या की जा सकती थी ? ऐसे संङ्कीर्ण नीतिवाले समाचार पत्रों ने स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका जाने का प्रतिवाद किया तो आश्चर्य ही क्या है ? हिन्दी के स्वर्गीय एक "कोविद रत्न" ने तो टेसू लिखकर ही विवेकानन्द की दिल्लगी उड़ाई थी। इस पर उदार हृदय पाठकों को क्षुब्ध नहीं होना चाहिये। क्योंकि आज कल भी हिन्दी भाषा के कितने ही समाचार पत्रों के ऐसे ऐसे सभ्य और शिक्षित सम्पादक हैं, जो अपने प्रतिवादियों को" टेसू की उम्मेद्वारी या "होली का नाच" लिखकर गालियां दिया करते हैं। कितने ही ऐसे सम्पादक हैं जो हिन्दू समाज से पुरानी कुप्रथाओं को उठाने में पाप समझते हैं हिन्दी ही के पत्र क्यों बङ्गभाषा तथा उर्दू के समाचार पत्र भी इस रोग से मुक्त नहीं है। अतएव पुरानी चाल के अंग्रेज़ी भाषा के समाचार पत्रों ने भी स्वामी विवेकानन्द की विलायत यात्रा का प्रवल प्रतिवाद किया था, पर इस विरोध से स्वामी विवेकानन्द की यात्रा में कुछ रुकावट नहीं हुई। वे किसी विरोध बाधा से भयभीत न होकर

"करतल भिक्षा, तरुतल वासा" इस सिद्धान्त को धारण करके जापान होते हुए अमेरिका पहुंच ही तो गये ।

अमेरिका प्रवास

कहा जाता है, परमेश्वर उसकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करता है। जब स्वामी विवेकानन्द अपने आत्मिक बल के सहारे अमेरिका जाने को तैयार हुए तो परमेश्वर ने भी उनको सहायता दी। अमेरिका में पग रखते ही उनके धैर्य की परीक्षा का समय उपस्थित हुआ। जिस समय वे अमेरिका पहुंचे, उस समय उनके पास जो थोड़ा सा रुपया था, निबट गया। वहाँ उनके भूखे मरने की नौबत तक आगई थी। वहां अनेक कठिनाइयों से सामना करना पड़ा। सम्भव है इसी लिये स्वामी जी ने अपने एक व्याख्यान में कहा था:—

संसार में जितने प्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं, यदि ध्यान देकर उनके चरित्र पढ़ोगे तो तुमको मालूम होगा कि दुःख ने विशेष करके उनके जीवन को उच्च और उदार बनाने में बहुत बड़ा काम किया है। दुःख ने सुख की अपेक्षा उनको उत्तम शिक्षायें दीं, निर्धनता ने सधनता की अपेक्षा उनको परिश्रमी और सहनशील बनाया। निन्दा और अनादर के

थपेड़ों ने प्रशंसा और श्लाघा की अपेक्षा उनकी छिपी हुई आन्तरिक योग्यता को अधिक उभरने का अवसर दिया"।

एक दिन जब वे बोस्टन के पास एक गांव की गली में खिन्न चित्त से भ्रमण कर रहे थे, तब तो एक वृद्धा महिला को स्वामी जी की सूरत शक्ल और पोशाक देख कर आश्चर्य हुआ। इसमें सन्देह नहीं, स्त्रियों के हृदय में दया का श्रोत पुरुषों की अपेक्षा विशेष होता है। जब तिब्बत में बौद्ध लामा, ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध संस्थापक, प्रातः स्मरणीय राजा राजमोहन राय के प्राण लेने को उतारु होगये थे तब वहां पर बौद्ध महिलाओं ने राजा साहब के जीवन की रक्षा की थी। यही दशा स्वामी विवेकानन्द की भी हुई उनका परिचय अमेरिकनों को उक्त अमेरिकन महिला द्वारा प्राप्त हुआ था। एक अमेरिकन महिला का गेरुआ बस्त्रधारी हिन्दू संन्यासी के प्रति इस भांति अपनी दया का परिचय देना क्या परमात्मा की प्रेरणा नहीं है?

अमेरिकन महिला ने स्वामी जी से यह जान कर कि वे कौन हैं? उनको अपने यहां भोजन के निमित्त निमन्त्रण दिया अमेरिकन लोग बड़े ही कौतुक प्रिय होते हैं। इस अमरिकन महिला ने भी स्वामी जी को अपने यहां निमन्त्रण देने में विशेष कौतुक समझा था। उसने समझा था कि पूर्वीय मनुष्यों का नमूना ही अपने मित्रों को दिखलावेंगे। किन्तु थोड़ी देर पीछे ही उक्त अमेरिकन महिला को ज्ञात हुआ कि ये तो गूदड़ी

में लाल छिपे हुए हैं। यह "पूर्वीय नमूना" तो अद्भुत प्रतिभा शाली है। और ऐसा प्रतिभाशाली है कि पश्चिमी सभ्यता के केन्द्रस्थल में भी ऐसे "नमूने" बहुत कम मिलते हैं। स्वामी जी के दार्शनिक विचारों को अमेरिकन महिला और उसके मित्र समझ नहीं सके ! इसलिये उन्होंने दर्शन शास्त्र के एक अध्यापक को उनसे मिलने के लिये बुलाया था। यह सच है, हीरे की परख जौहरी ही जान सकता है। दर्शन शास्त्र के अध्यापकने स्वामीजी से भेंट करते ही उनको पहचान लिया कि वह एक रत्न हैं ? उस अमेरिकन अध्यापक ने स्वामी जी का शिकागो की पार्लीयामेंट आफ़ रिलीजन्स (धार्मिक सम्मेलन) के अध्यक्ष डा॰ बेरोज (Barrows) से परिचय कराया था। उक्त डाक्टर ने स्वामी जी को सम्मेलन में हिन्दुओं का प्रतिनिधि स्थिर किया था।

धार्मिक परिषद् में वक्तृता

धार्मिक परिषद् में स्वामी जी ने जो पहिली वक्तृता दी थी। उस से ही उनकी अमेरिका में विशेष ख्याति हो गई थी। उनका इस पहिली वक्तृता से ही अमेरिकनों पर सिक्का जम गया था उनकी अलौकिक वक्तृत्व शक्ति, विचार शैली और मधुर वार्त्तालाप ने अमेरिकनों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। उन्होंने स्वयं अपने पत्र में जो शिकागो से २ नवम्बर १८९३ को भेजा था, लिखा है:—"जिस दिन परिषद् की उप-

क्रम सभा हुई उस दिन सुबह हम सब प्रतिनिधि आर्ट पैलेस नामक एक घर में पहले एकत्र हुये। सभा होने के लिये एक भव्य मण्डप तैयार किया गया था और उसके चारो ओर दूसरे छोटे २ मण्डप भी कमरों को जगह पर बनाये गये हैं। अपने देश से ब्रह्मसमाज की तरफ़ से श्रीयुक्त माजूमदार, बम्बई के श्रीयुक्त नगर कर, जैन धर्म प्रतिनिधि श्रीयुक्त गांधी और थियासोफ़ी की ओर से श्रीमती बेसेण्ट और श्रीयुक्त चक्र-वर्ती आदि लोग आये हैं इनमें से श्रीयुत माजूमदार से मेरी पहिले से पहिचान थी और श्रीयुत चक्रवर्ती मुझे नाम से पहचानते थे। इसके बाद हमने जुलूस की धूमधाम के साथ सभागृह में प्रवेश किया और हमारे बैठने के लिये जिस उच्च पीठ की योजना की गई थी उस पर जा बैठे। इसी पीठ पर और छः सात सौ उच्च वर्गीय अमेरिकन लोग भी बैठे थे। यह सब समाज देखकर मैं तो एक दम घबड़ा गया, और अब इस समाज में मैं व्याख्यान देने वाला हूं। मेरा हृदय धड़कने लगा, और जीभ बिलकुल सूख कर तलुवे में जा लगी। श्रीयुत माजूमदार का व्याख्यान बहुत ही सरस हुआ, चक्र, वर्ती उनसे भी अच्छे बोले और श्रोता लोगों ने भी उन दोनों का अच्छा आदर किया। उन सबों ने बहुत उत्तम तयारी की थी। उन्हों ने अपने व्याख्यान पहेले ही से पाठ कर रखे थे मुझ मूर्ख को यह विचार पहले सूझा ही नहीं, और अन्त में

प्रसङ्ग आ ही पहुंचा। डाक्टर बेरोज ने श्रोताओं को मेरा परिचय दे दिया। मैंने मन ही मन में देवी सरस्वती को बन्दना कर व्याख्यान शुरू किया।

अमेरिका के मेरे प्यारे भाई और बहिनों!

दो मिनट तक तालियों की गर्जना कानों की झिल्लियां फाड़ रही थीं। मैंने अपना व्याख्यान जैसे तैसे करके समाप्त किया। जब मैं बैठ गया तब जान पड़ा कि जैसे बड़ा भारी बोझा मेरे सिर पर से उतर गया हो। दूसरे दिन के समाचार पत्र देखे तब मुझे मालूम हुआ कि मेरा व्याख्यान सर्वोत्कृष्ट हुआ। इस दिन से मैं विख्यात मनुष्यों में गिना जाने लगा। जिस दिन मैंने अपना वेदान्त विषयक निबंध पढ़ा उस दिन तो बेहद्द भीड़ हुई थी। समाचार पत्रों ने भी मेरी खूब स्तुति की थी। इस कारण सभ्य स्त्रियां तो उस दिन बहुत ही एकत्रित हुई थीं। परिषद् भर के सारे व्याख्याताओं में उत्तम व्याख्यान देने के कारण प्रायः सभी समाचार पत्र मेरी प्रशंसा कर रहे थे।

इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी जी की इस वक्तृता ने अमेरिकन लोगों पर विशेष प्रभाव डाला था। जब उन्होंने हिन्दू धर्म पर अपना निबंध पढ़ा था तब सभी ने उसको बड़े चाव से सुना था। वहां के समाचार पत्रों में उनकी वक्तृता की बड़ी प्रशंसा निकली थी। अमेरिका में जिधर देखिये

उधर इनकी वक्तृता की धूम मची हुई थी। न्यूयार्क क्रिटिक नामक एक अख़बार ने लिखा थाः—"वह (स्वामी विवेकानन्द) ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ महान वक्ता है। उसका मज़बूत और चमत्कारिक मुख, पीले और नारङ्गी वस्त्र, उन सच्चे वचन और बहुमूल्य भाषण से कम चित्ताकर्षण करनेवाले न थे"। दूसरे अख़बार न्यूयार्क हेरल्ड ने लिखा था—"इसमें सन्देह नहीं कि पार्लीयामेंट आफ़ रिलीजन्स में स्वामी विवेकानन्द एक महान पुरुष हैं। उनकी वक्तृता सुनकर हम सोचने लगे हैं कि ऐसी विदुषी जाति के लिये पादरियों को भेजना कैसी मूर्खता है" ?

वहां की अनेक सभाओं ने स्वामी जी को अपने यहां व्याख्यान देने के लिये बुलाया था। किसी ने सच कहा है "राजा का नाम केवल अपने देश में ही होता है पर विद्वान का सर्वत्र होता है"। बस इस न्याय के अनुसार ही स्वामी विवेकानन्द का अमेरिका में खूब मान हुआ। दो अमेरिकन उनके शिष्य भी हुये। जिनमें से एक मेडम लुईस थी जो पीछे स्वामी अभयानन्द के नाम से विख्यात हुई। यह एक फ्रेंच स्त्री थी। दूसरा एक पुरुष था, जिसका नाम मिस्टर सन्डसवर्ग था जो पीछे कृपानन्द कहलाया। स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में अगणित स्थानों में व्याख्यान दिये थे। जिससे अमेरिका में वेदान्त सम्बन्धी चर्चा खूब फैली। यों स्वामी विवेकानन्द

ने अमेरिका में वेदान्त की ध्वजा पताका उड़ाकर भारतमाता के गौरव को बढ़ाया था।

इङ्गलैण्ड यात्रा

सन् १८९५ अक्टूबर–१८९६ दिसम्बर

अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८९५ अक्टूबर में इङ्गलैण्ड की यात्रा की थी। वहां वे तीन मास तक रहे थे। वहां इनके व्याख्यानों की खूब धूमधाम रही थी। इङ्गलैण्ड में स्वामीजी के व्याख्यानों के प्रभाव का अनुभव केवल इतने ही से किया जा सकता है कि एक अंग्रेज़ी अख़बार ने उस समय लिखा था :–"लण्डन में अनेक जातियों के, अनेक अवस्थाओं के मनुष्य मिलते हैं, पर इस समय इङ्गलैण्ड में उस तत्ववेत्ता से बढ़कर और कोई व्यक्ति नहीं है कि अभी शिकागो में धार्मिक परिषद् हुई है, जिसमें वह हिन्दू धर्म की ओर से प्रतिनिधि था।"

उन दिनों प्रोफ़ेसर मैक्समूलर भी जीवित थे, स्वामी जी ने उक्त प्रोफ़ेसर महोदय से भी भेंट की थी, और उनसे श्रीरामकृष्ण परमहंस के जीवन चरित और उपदेश के छापने का अनुरोध किया था। वहां मिस मारगेट नोबिल जो पीछे

*भगिनी निवेदिता के नाम से भारतवर्ष में विख्यात हुईं थीं इनकी शिष्या हो गईं थीं। इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द के दो और भी अङ्गरेज़ शिष्य हुये थे। उनमें से एक स्वर्गीय जे० जे० गोविन था, वह जहां स्वामी जी जाते थे, उनके साथ ही साथ जाता था। दूसरा कप्तान सेवियर था, जिसने हिमालय के मायावती में अद्वैताश्रम स्थापित करने में सहायता दी थी इङ्गलैण्ड से स्वामी जी ६ वीं दिसम्बर १८६५ को अमेरिका लौट आये थे। उस समय उनके शिष्यों ने अमेरिका के कई स्थानों में स्वतन्त्र मठ स्थापित कर लिये थे। इङ्गलैण्ड से लौट कर उन्हों ने "सन्डे लेकचर" (रविवार व्याख्यान श्रेणी) शुरू किये थे। जिसमें श्रीमद्भागवतगीता तथा अन्यविषयों पर इनके व्याख्यान होते रहे थे।

भारतवर्ष को लौटना

सन् १८६६ दिसम्बर से १८६६ जून

इस भांति सभ्य देशों में वेदान्त की ध्वजा पताका उड़ाकर स्वामी जी १६ वीं दिसम्बर सन् १८६६ को अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष को चल पड़े थे। साथ में कितनी ही अंगरेज़ी

भारतवर्ष में आकर भगिनी निवेदिता श्रीगौराङ्ग महाप्रभु की भक्ता हो गईं थीं।—लेखक

महिलाएं और सज्जनों को शिष्य रूप में यहां लाये थे। जिस जहाज़ में स्वामीजी सवार थे वह १५ वीं जनवरी सन् १८९७ को कोलम्बो बन्दर पहुंचा था। वहां पर उनका खूब धूमधाम से स्वागत हुआ फिर इसी अवसर पर स्वामीजी ने कोलम्बो से अल्मोड़ा तक यात्रा की थी। जहां कहीं वे गये वहीं उनका विशेष रूप से स्वागत हुआ था; स्थान स्थान में उनको अभिनन्दन पत्र समर्पण किये गये थे और उन्होंने वेदान्त का खूब प्रचार किया था। ब्रह्मचारियों के पढ़ाने के लिये दो मठ स्थापित किये थे एक तो कलकत्ते से उत्तर की ओर ६ मील की दूरी पर दूसरा हिमालय के पास बनाया था। रामकृष्ण मिशन का सङ्गठन किया था। १८९७ में भारतवर्ष में भयङ्कर अकाल पड़ा था। स्वामीजी ने दुर्भिक्ष पीड़ित व्यक्तियों के सहायतार्थ अनेक स्थानों में रामकृष्ण मिशन रिलीफ़ वर्क्स स्थापित किए थे।

विदेश गमन

इन सब कार्यों के झंझटों से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था अच्छे अच्छे वैद्यों और डाक्टरों ने उनको आब हवा बदलने के लिये अमेरिका और इङ्गलैण्ड जाने की सलाह दी थी। अतएव पुनः उनको इङ्गलैण्ड जाना पड़ा और फिर वहां से

अमेरिका गये थे, केलीफोर्निया में थोड़े दिन रहनेपर उनका स्वास्थ्य सुधर गया था और फिर उपदेश करने लग गये थे सेनफ्रान्सिस्को में वेदान्त सोसाईटी ओर एक शान्ति आश्रम स्थापित किया था। जो अभी तक अच्छी स्थिति में है। न्यूयोर्क में रहते समय उनको पेरिस से कांग्रेस आफ् रिलजन्स का निमन्त्रण मिला था जो सन् १९०० में वहां होने वाली थो। वहां फ्रेंच भाषा में उन्हों ने हिन्दू दर्शन पर कई व्याख्यान दिये थे।

भारतवर्ष को लौटना

वहां से भारतवर्ष को लौटे; पर स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था। भारतमाता का यह दुर्भाग्य है कि यहां सार्वजनिक कार्य करने वालों का स्वास्थ्य बहुत ख़राब हो जाता है और वे अपने स्वास्थ्य की कुछ चिन्ता भी नहीं करते हैं। अतएव स्वामीजी भी अपने स्वास्थ्य की कुछ चिन्ता न करके निरन्तर कार्य करते ही रहे। रामकृष्ण सेवाश्रम साधुओं की सहायतार्थ स्थापित किया था। काशी में एक और आश्रम ब्रह्मचारियों के पढ़ाने के लिये स्थापित किया था विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये एक रामकृष्ण पाठशाला भी खोली थी। इसी अवसर में जापान से कई नामी जापानी उनको धार्मिक परिषद्‌ में जो उस समय जापान में होनेवाली थी, बुला के लिये

आये थे किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्होंने वहां जाने का विचार परित्याग कर दिया था।

मृत्यु

सन् १९०२ की चौथी जुलाई, भारतवर्ष में दुर्दैव उपस्थित करने को आई थी। शोक! अत्यन्त शोक!!! भारतभाता के जिस लाल ने सात समुद्र, तेरह नदी पार कर वेदान्त की ध्वजा फहरा कर, सभ्यताभिमानी देशों के निवासियों के हृदयों पर विजय प्राप्त की थी। आज के दिन उसी को कराल काल ने झपट लिया। दुष्टा मृत्यु ने वृद्धा भारतमाता पर तनिक भी दया नहीं की। चौथी जुलाई सन् १९०२ की रात्रि के ९ बजे पर स्वामीजी का देहान्त हुआ शोक! शोक!! महाशोक!!! भारत माता की गोद में से एक ऐसा पुत्र रत्न उठ गया जिसका स्थान अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है।

स्मारक

दुख के साथ कहना पड़ता है भारतवासियों में कृतघ्नता की विशेष मात्रा बढ़ी हुई है। नहीं तो क्या स्वामीजी के स्थान स्थान में आज कुछ स्मारक न होते? हिन्दू जाति! तू भले ही औरों के साथ अपनी कृतज्ञता का पूर्ण परिचय देती रही हो।

पर इसमें सन्देह नहीं, तू अपने लालों के साथ सदैव निष्ठुरता का परिचय देती आई है। तूने राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती को बिगानों से भी बढ़कर समझा था तूने स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का अमेरिका और इङ्गलैण्ड के समान भी अपने यहां आदर नहीं किया। यदि हिन्दू जाति स्वामी विवेकानन्द के प्रति अपना कुछ भी कर्तव्य समझती तो आज क्या भारतवर्ष के स्थान स्थान में उनका कोई स्मारक नहीं दिखलाई पड़ता। यद्यपि कलकत्ते के निकट बेलूरमठ में रामकृष्ण मिशन ने उनका स्मारक रखने का कुछ प्रयत्न किया है, किन्तु समस्त हिन्दुओं को स्वामीजी का कुछ स्मारक बनाना चाहिये। स्मरण रहे जो जाति अपनी योग्य सन्तानों का आदर करना नहीं सीखती है उस जाति की कदापि उन्नति नहीं होती है।

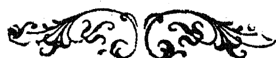
स्वामीजी के जीवन पर एक दृष्टि

अब विचारना चाहिये, स्वामी विवेकानन्द में ऐसे क्या गुण थे, जिससे उनका भारतवासियों पर ही नहीं, बल्कि विदेशियों तक पर प्रभाव पड़ा है। इसमें सन्देह नहीं, स्वामी विवेकानन्द अंगरेज़ी भाषा के अच्छे विद्वान थे तथा और भी कई भाषाओं के ज्ञाता थे। प्रभावशाली वक्ता थे, कवि भी थे। परन्तु ये सब ऐसे अलौकिक गुण नहीं जो अन्य व्यक्तियों

में न हों। भगवान् की कृपा से इस समय भी भारतवर्ष में स्वामी विवेकानन्द के समान और उनसे बढ़ कर भी अच्छे अच्छे पुरुष विद्यमान हैं वक्ता और कवियों का भी अभाव नहीं है। पर स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों के विशेष प्रभाव होने का कारण केवल उनका हृदय था उनके हृदय में भारतवर्ष और मनुष्य जाति के प्रति प्रेम भरा हुआ था। यही दशा स्वामी राम तीर्थ की थी। जब से स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ अमेरिका से लौटे तब से दोनों की यह अपरिमित लालसा हो गयी थी कि इस वृद्धा भारतमाता को जो यन्त्रणाएं मिल रही हैं, वे दूर हों। पर भारतमाता अथवा हमारे दुर्भाग्यवश उक्त दोनों पुरुष इस संसार से शीघ्र चल बसे। परमात्मा को यह स्वीकार न हुआ कि भारतमाता के ऐसे पुत्र थोड़े दिन तो यहां और ठहरते। स्वामी विवेकानन्द के हृदय में सहानुभूति और देशभक्ति का स्रोत कितना बह रह था उनका पता उन पत्रों से लगता है, जो उन्होंने जापान अमेरिकादि देशों से अपने भारतीय मित्रों को भेजे थे। आज कल कई यूनिवर्सिटीज़ अपने यहां के छात्रों को अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि विलियम कोपर के लेटरस् (पत्र) पढ़ाया करती हैं। नहीं जानते जब कभी किसी स्वदेशी विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा होगी तब स्वामी विवेकानन्द के पत्रों को कितना उच्च स्थान प्राप्त होगा!।

प्रेम के अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द में एक और भारी

गुण था। वह था त्याग और वैराग्य। इस समय त्याग और वैराग्य की चाहे जैसी मिट्टी पलीद हो रही हो पर सच्चे त्याग और वैराग्य बिना कभी कोई परोपकार में रत नहीं हो सकता है वर्त्तमान समय में भी रामकृष्ण परमहंस स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ त्याग और वैराग्य की सजीव एवम् ज्वलन्त मूर्ति है। इस समय लाला लाजपत राय जो त्याग और वैराग्य की निन्दा करते हैं, वह इसलिये कि आज कल जितने त्यागी और वैरागी हैं, वे त्याग और वैराग्य दोनों शब्दों की हत्या कर रहे हैं। उनका त्याग और वैराग्य बनावटी है। वे त्यागी और वैरागी बन कर अपने जीवन का बोझ समाज पर डालते हैं। अतएव इस बनावटी त्याग और वैराग्य की जितनी निन्दा की जाय उतनी ही थोड़ी है। पर सच्चे त्याग और वैराग्य की भी आवश्यकता प्रत्यक्ष प्रतीत हो रही है। इस सच्चे त्याग और वैराग्य के बल ही स्वामी विवेकानन्द अमेरिका जैसे प्रकृति-वादी देश में वेदान्त की ध्वाजा फहराने में समर्थ हुए थे। स्वामी विवेकानन्द अविवाहित और ब्रह्मचारी थे. सुतराम ब्रह्मचर्य ने भी त्याग और वैराग्य के साथ ही साथ उनको नव्य भारत के निर्माण करने में सहायता दी थी।



दूसरा परिच्छेद

राष्ट्रीय विचार

स्वामीजी की देशभक्ति।

स्वामीजी की देशभक्ति तो शब्द शब्द में टपकती है। जापान से स्वामीजी ने जो पत्र भेजा था, वह अन्यत्र प्रकाशित है उसको पढ़कर पाठक जान सकेंगे कि स्वामीजी के हृदय में भारतभूमि के प्रति कितनी ममता थी? स्वामी विवेकानन्द वेदान्ती थे, वेदान्त का उद्देश्य अपना पराया कुछ न समझना है। पर स्वामी विवेकानन्द मातृभूमि के प्रति प्रेम का लोभ सम्वरण नहीं कर सके थे। कलकत्ता में जो अभिनन्दन पत्र (एड्रेस) उनको भेंट किया गया था उसके उत्तर में उन्होंने एक स्थल पर कहा था:-*"मेरे चलते समय, मुझसे एक अंग-

*"I was asked by an English freind on thc eve of my departure" Swami? how do you like now your mother land after four years' experience of the luxurious' glorious powerful west,, ? I could only answer. "India I loved before I came away. Now the very dust of India has become holy to me, the very air is now to me holy, it is now the holy land the place of pilgrimage the Tirtha" (from Columbo to Almora, page 220.)

रेज़ मित्र ने पूछा था:—"स्वामी! विलासी, प्रतापी और शक्ति शाली पश्चिम में चार वर्ष के अनुभव के पश्चात् भारतवर्ष को अब आप कैसा पसन्द करते हो?" मैं इसका उत्तर केवल इतना ही दे सका, "मुझे यहां आने से पहिले भी भारतमाता के प्रति ममता थी। अब वही भारतवर्ष की धूली मेरे लिये पवित्र है। अब वह पवित्र भूमि मेरे लिये तीर्थ है। इसके अतिरिक्त उनके पत्रों में स्थान स्थान पर भारतवर्ष के प्रति प्रेम टपकता है। उन्होंने दारजिलिङ्ग से "भारती" की सम्पादिका के नाम जो पत्र भेजा था, उसमें लिखा हैं:—* धर्म ज्ञान का प्रचार करने के लिये प्रदेश जाने में मेरा यही उद्देश्य था कि मैं अपनी जन्मभूमि के उद्धार के लिये कुछ प्रयत्न करूं। मैं फिर युरोप जाऊंगा या नहीं सो आज निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। अब भी यदि मैं जाऊंगा तो मेरा उद्देश्य केवल अपनी मातृभूमि की सेवा करना होगा वास्तव में इससे बढ़ कर और उनकी देशभक्ति का ज्वलन्त दृष्टान्त क्या मिल सकता है?

वर्तमान शिक्षा पर स्वामीजी

अब हम स्वामी विवेकानन्द के विचारों की पर्यालोचना में प्रवृत्त होते हैं। स्वामी विवेकानन्द के धार्मिक सामाजिक

* स्वामी विवेकानन्द का पत्र व्यवहार पेज नं० ६४—६५।

और राजनैतिक विचार चाहे जैसे रहे हों पर इसमें सन्देह नहीं उनका समस्त पुरुषार्थ भारतवर्ष के राष्ट्र निर्माण की ओर विशेष रूप से रहा था। राष्ट्र निर्माण का प्रथम साधन राष्ट्रीय शिक्षा है स्वामी विवेकानन्द का हृदय भी भारतवर्ष में शिक्षा का वर्त्तमान परिणाम देख कर विह्वल होगया था। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता अपनी वक्तृताओं तथा पत्रों में कई स्थानों पर दर्शायी है मदरास में स्वामी जी ने एक व्याख्यान The future of India अर्थात् भारतवर्ष का भविष्य दिया था। उसमें अन्यान्य बातों के साथ ही साथ स्वामीजी ने शिक्षा सम्बन्धी अपने विचार प्रकट किये थे। जिसके कुछ अंशों का अनुवाद यहां दिया जाता है। स्वामी जी ने कहा था :—"हमको जाति की धार्मिक और गार्हस्थ्य शिक्षा को थामना होगा। क्या तुम उसको समझते हो? तुमको सोचना चाहिये, तुमको बोलना चाहिये, तुमको ध्यान देना चाहिये और तुमको काम करना चाहिये। पर तिस पर जाति के लिये कोई मुक्ति नहीं है। यह शिक्षा जो तुम प्राप्त कर रहे हो उसमें कुछ अच्छी बातें हैं किन्तु उसमें एक बहुत भारी बुराई है और यह बुराई इतनी अधिक है कि इसमें सभी अच्छी बातें दब गई हैं* प्रथम बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनाने

*यहां स्वामीजी का यह तात्पर्य है कि शिक्षा प्राप्त करने पर भी शिक्षा के जो गुण हैं वे मनुष्य में न आये तो शिक्षा न होने के बराबर है न उससे कुछ लाभ है।

वाली नहीं है, शिक्षा न होने के समान है। जो निषेधात्मक शिक्षा अथवा ऐसी कोई पढ़ाई जिसमें अभावात्मक भरा हो मृत्यु से भी बुरी है। लड़का स्कूल भेजा जाता है और वहां पर सबसे पहिली बात जो सीखता है वह यह है कि मेरा बाप मूर्ख था। दूसरी बात यह है कि मेरा दादा (पितामाह) पागल था। तीसरी बात यह है जितने अध्यापक हैं सब के सब कपटी बनावटी हैं, चौथे यह जितने पवित्र ग्रंथ है सब मिथ्या हैं इस समय तक वह सोलह वर्ष का हो जाता है उसे कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता है और उस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि लगातार पचास वर्ष के शिक्षा प्रचार होने पर भी तीनों प्रेसीडेन्सीज़ (प्रान्तों) में एक भी अदमी पैदा न हुआ। जिस किसी मौलिक पुरुष का आर्विभाव हुआ है उसने इस देश में शिक्षा प्राप्त नहीं की है दूसरे देशों में शिक्षा प्राप्त की अथवा वे एक बार पुराने विश्वविद्यालयों में मिथ्या विश्वासों को दूर करने के लिए गए हैं। यह शिक्षा नहीं है। यह केवल समाचारों का ढेर अपने मस्तिष्क में भर लेना और उन पर दङ्गा मचाते रहना और अपने समस्त जीवनको वाटरलू का संग्राम बनाना ही शिक्षा नहीं है। हमको जीवन बनाना, मनुष्य निर्माण करना, चरित्र संगठन करना और विचारों को एकसा करना है यदि तुमने पांच विचार एक से कर लिये और अपना जीवन तथा चरित्र संगठन कर लिया तो

तुम्हारे पास उस मनुष्य की अपेक्षा अधिक शिक्षा है जो पुस्तकालय द्वारा कंठ करके शिक्षा दे सकता है। जिस गधे पर चन्दन लदा होता है। वह सिर्फ चन्दन के बोझ को ही जानता है नकि चन्दन का मूल्य पहिचानता है। यदि शिक्षा केवल जानकारी ही प्राप्त करा सकती है तो इस संसार में ग्रन्थालय सब से बड़े महात्मा और विश्वकोष (Encyclopidia) ऋषि हैं। इस लिये हमारे हाथों में समस्त देश की शिक्षा का धार्मिक और गार्हस्थ्य आदर्श होना चाहिये। और जहां तक हो सके राष्ट्रीय पद्धति और राष्ट्रीय प्रणाली पर होनी चाहिये। हो सकता है कि उन्होंने आगे चल कर इस व्याख्यान में धार्मिक शिक्षा की जो प्रणाली बतलाई है, उससे शायद कोई सहमत न हो, परन्तु यह सब निर्विवाद स्वीकार करेंगे कि इस देश में धार्मिक और नैतिक शिक्षा की विशेष आवश्यकता है। इस भांति शिक्षा सम्बन्धी विचार उन्होंने कई स्थानों पर प्रकट किये हैं। स्थान के सङ्कोच के कारण यहां पर हम सब को उद्धृत करने में असमर्थ हैं। देवगढ़ वैद्यनाथ से २३ वीं दिसम्बर सन् १९०० को स्वामीजी ने एक बङ्गालिन महिला को जो पत्र लिखा था उसका कुछ अंश यहां उद्धृत करते हैं जिससे उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों का पाठकों को और भी पता लग जावेगा। स्वामी जी लिखते हैं:— "शिक्षा" यह शब्द बहुत व्यापक अर्थ का है। विस्तृत वचन से ज्ञान दर्शक

शब्दों का बड़ा संग्रह मस्तिष्क में भर लेना शिक्षा नहीं है। इसे यदि शिक्षा कहेंगे तो एक बड़े कोष को भी सुशिक्षित कह सकेंगे। उसी प्रकार अनेक प्रकार के विषयों पर व्याख्यान दे लेना भी सुशिक्षा का लक्षण नहीं है। जिसे पठन, मनन अथवा आचरण से हम अपनी इच्छा शक्ति का निग्रह करके उसे योग्य मार्ग पर ला सकते हैं और प्रत्यक्ष फलदायी कर सकते हैं उसे शिक्षा कहते हैं। तो फिर जिस शिक्षा से इच्छा शक्ति जागृत नहीं होती किन्तु वह निद्रा रोग से ग्रस्त होकर मृत्यु पथपर आरूढ़ होती है उसे क्या शिक्षा नाम दिया जा सकता है मै तो यह कहता हूं कि मनुष्य की बुद्धि, वृद्ध के लिये पूर्ण अवकाश और स्वतंत्रता मिलने पर उसके वर्ताव में कुछ समय तक प्रमाद भी होंगे। पर मैं समझता हूं कि ये प्रमाद भी उस शुद्ध आचरण से श्रेष्ठ होंगे। जो केवल यांत्रिक पद्धति से होता है। यह यदि सच है तो ऐसे निर्जीव मृत पिण्डों के बने हुए समाज का सृष्टि में क्या महत्व है? ये शृङ्खलायें यदि न होतीं तो, सब राष्ट्रों में अगुआ कहलाने का उसे क्या हक़ है। और जहां की भूमि सारी पृथ्वी भरको ज्ञान देनेवाली खान है क्या वही राष्ट्र आज गुलामी का राष्ट्र और वही भूमि क्या आज मूर्खता की जन्मदात्री के कलङ्कित नामों से प्रसिद्ध हो रही होती।

जापान और स्वामी

जिस समय स्वामी विवेकानन्द जापान होते हुए अमेरिका गये थे, उस समय जापान का इतना नाम नहीं हुआ था, जितना अब है। पर स्वामी जी उसी समय जापान को देखकर पहचान गये थे कि अवश्य एक दिन यह देश उन्नति के शिखर पर पहुंचेगा। और इसके गुणों के सामने संसार के अन्य देशों को अपना मस्तक झुकाना होगा। उन्होंने जापान से जो चिट्ठी भारतवर्ष को भेजी थी उसमें भारतीय नवयुवकों को जापान देखने का परामर्श दिया है। बड़े ही मार्म्मिक शब्दों में भारतवासियों को जापान से अच्छी अच्छी बातों के सीखने की अपील की है जापान से स्वामी जी ने जो पत्र भेजा था, उसका अक्षर अक्षर पढ़ने योग्य है। इसी लिये हिन्दी पाठकों के विनोदार्थ उक्त चिट्ठी का यहां स्वतंत्र अनुवाद प्रकाशित किया जाता है:—"इस संसार में जापानी पवित्र मनुष्यों में से एक हैं। उनकी प्रत्येक वस्तु स्वच्छ और सुन्दर है। उनकी गलियां प्रायः चौड़ी और सीधी तथा नियमित रूप से पटी हुई हैं। उनके घर पिंजड़े के समान छोटे छोटे, पर बिलकुल स्वच्छ हैं। उनके जंगली वृक्ष, सदैव हरी भरी रहने वाली छोटी पहाड़ियां प्रत्येक गांव और शहर का पिछवाड़ा बनाये हुए हैं! नाटा क़द, सुन्दर शरीर जापानी पोशाक, उनके कार्य, ढङ्ग, भाव प्रभृति सब ही चित्र

के समान मनोहर हैं; जापान मनोरंजन की भूमि है, बहुधा प्रत्येक घर के साथ एक छोटा सा बाग भी है। जिसमें छोटी छोटी झाड़ियां, घास की चौरस भूमि, छोटे छोटे बनावटी पानी के झरने और पत्थर के छोटे छोटे पुल हैं।

ज्ञात होता है, जापानियों को वर्तमान समय की आवश्यकता पूरी तरह से सूझ गई है। उन्होंने तोपों सहित अपनी सेना का पूरा संगठन कर लिया है। कहा जाता है, उनके कर्मचारियों में से एक ने तोपों का आविष्कार किया है जिनके मुकाबिले में कोई दूसरी तोप नहीं है। वे लगातार लड़ाई के जहाज़ का बेड़ा भी बढ़ा रहे हैं। मैं ने जापानी इन्जीनियर की बनाई एक सुरङ्ग (समुद्र के भीतर जहाज़ डुबोने वाली) देखी, जो लग भग एक मील लम्बी है। यहां की दियासलाईयों की फैक्टरी (कारखाना) भी देखने योग्य है। और वे इस पर भी झुके हुये हैं, जिस बात की आवश्यकता हो, वह अपने देश में ही बना लेना।

मैंने बहुत से मन्दिर देखे, प्रत्येक मन्दिर में पुराने बङ्गाली अक्षर, संस्कृत में कुछ मन्त्र लिखे हुए हैं। कुछ थोड़े से ही पुरोहित संस्कृत जानते हैं, पर वह चतुर बुद्धिमान दल हैं। उन्नति की वर्त्तमान तेजी पुरोहितों के भीतर भी प्रवेश कर गयी है। जापान के बारे में जो कुछ मेरे हृदय में है वह इस छोटे से पत्र में नहीं लिख सकता हूं मैं केवल यही

चाहता हूं हमारे नवयुवकों को प्रति वर्ष जापान और चीन आना चाहिये। जापानी लोग अब भी यह समझते हैं कि भारतवर्ष कैवल्य भूमि है! और तुम वास्तव में हो क्या? तुम अपनी सारी ज़िन्दगी बक बक करते रहे हो, व्यर्थ बातें बनाते रहते हो? आओ! इन जापानी आदमियों को देखो। फिर जाओ लज्जा के कारण अपना मुंह छिपा लो। एक बुद्धि हीन जाति, वाले अगर तुम जाओगे तो तुम्हारी जाति खो जायगी। सहस्रों वर्ष तक अपने सिरों पर बहमों का बोझा लाद कर बने रहने वाले, सहस्र वर्षों से भोजन की छूत अछूत के सम्बन्ध में अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हो। युगान्तर के लगातार सामाजिक अत्याचारों ने तुम में से मनुष्यता (इन्सानियत) को कुचल डाला है। अब तुम क्या हो? और अब क्या कर रहे हो?......हाथ में बड़े बड़े पोथे लिये समुद्र किनारे सैर करते हो यूरोपियन मस्तिष्क कार्य के बदहज़मी और भटकते हुए टुकड़ों को दुहराते रहते हो। सम्पूर्ण आत्मा तीस रुपये मासिक की ल्कर्की और अच्छे कानूनदां बनने में झुकी रहती है। यही नव्य भारत की उच्चकाँक्षा है। क्या समुद्र में तुम को, पुस्तकों, गाउन्स (विश्वविद्यालय के वस्त्र) और विश्वविद्यालय के प्रशंसा पत्र तथा समस्त को डुबोने के लिये भी पर्याप्त जल नहीं है।

आओ! आदमी बनो!! अपने सङ्कीर्ण घोंसलों (मकानों)

में से निकलो और दूर दूर तक देखो। देखो किस भांति जातियां बढ़ रही हैं क्या तुम मनुष्य को प्यार करते हो? क्या तुम अपने देश को प्यार करते हो? तब आओ हमको उच्च और उत्तम वस्तुओं के लिये द्वन्द करना उचित है। पीछे को मत देखो, सब से प्यारी और समीपस्थ आवाज़ तक को मत सुनो। पीछ को मत देखो, किन्तु बराबर सामने दृष्टि रहने दो।

आज भारत को कम से कम अपने एक सहस्र नवयुवक मनुष्यों की, पर ध्यान में रक्खो, मनुष्यों की न कि पशुओं की आवश्यकता है। परमेश्वर ने तुम्हारी बनावटी सभ्यता को तोड़ने के लिये अङ्गरेज़ी गवर्नमेन्ट को यन्त्र स्वरूप में भेजा है। मद्रास ने सब से पहिले आदमी, अंगरेज़ों को यहां टिक ने में सहायता देने के निमित्त दिये थे। अब मद्रास में कितने निस्वार्थ आदमी हैं, जो जीवन और मृत्यु के संग्राम में नये पदार्थ लाने को, दीनों को सहानुभूति, क्षुधा पीड़ितों को रोटी और बहुत से आदमियों को ज्ञान की ज्योति तथा तुम्हारे पूर्वजों के अत्याचारों के कारण जो पशु श्रेणी में आ चुके हैं 'उन्हें आदमी बनाने को तैयार हों'' ?

जाति की रक्षा करो

मैं नहीं जानता कि स्वामीजी के उपदेशों को पढ़कर लोगों ने क्या मतलब निकाला है? पर मैंने अब तक स्वामी जी के

जितने उपदेश पढ़े हैं, उनसे यही मतलब निकाला है कि दीन दुखियों, पीड़ितों की सहायता करना परमधर्म है। उनका कहना था, मनुष्य जाति विशेषतः मूर्ख भारतवासियों की रक्षा करनी चाहिये। स्वामी जी का हृदय दुर्बलों के प्रति अत्याचार सहन करने को तैयार नहीं होता था। मदरास में उन्होंने अपने एक व्याख्यान में कहा था:—"वर्तमान समय में मनुष्य इतने गिर गये हैं कि वे विचार करते हैं, कलियुग में हम कुछ कर नहीं सकते। यदि वे केवल किसी तीर्थ स्थान में जायंगे वहां उनके पाप क्षमा हो जांयगे। यदि कोई अपबित्र मनुष्य मन्दिर में जाता है तो अपने समस्त पापों को साथ वहां ले जाता है और घर को पहले से भी बुरी दशा में लौटता है। तीर्थ पवित्र पदार्थ और पवित्र मनुष्य से भरा हुआ स्थान है। किन्तु यदि कोई पवित्र मनुष्य किसी ऐसे स्थान में रहता है। कि वहां कोई मन्दिर नहीं है, तो भी वह तीर्थ है। यदि कोई अपवित्र मनुष्य किसी ऐसे स्थान में रहता है जहां सैकड़ों मन्दिर हों तो वह तीर्थ भी तीर्थ नही रहता है! तीर्थ स्थान में रहना बहुत कठिन है, यदि किसी साधारण स्थान में पाप किया जाता है तो उसका शीघ्र संशोधन हो जाता है पर तीर्थ स्थान में जो पाप किया जाता है उसका शीघ्र संशोधन नहीं हो सकता है। सभी उपासना का पवित्र उद्देश्य यही है कि स्वयं पवित्र रहो और दूसरों की भलाई

करो वह जो दीन दुखी में, पीड़ित में, शिव को देखता है, वही वास्तव में शिव की सच्ची उपासना करता है। और जो केवल मूर्त्ति में शिव को देखता है, उसकी उपासना प्रारम्भिक है। मन्दिरों में शिवजी के दर्शन करने की अपेक्षा, शिवजी उसी से अधिक प्रसन्न होते हैं, जिसने एक दीन दुःखी में शिव दर्शन करके, बिना उसके धर्म, जाति पांति का विचार किये उसकी सहायता और सेवा की है।

एक धनाढ्य मनुष्य के एक बाग़ था और उसके दो माली थे। इनमें से एक माली बहुत सुस्त था और कुछ काम नहीं करता था। पर जब कभी उसका धनाढ्य स्वामी बाग़ में आता तो यह सुस्त आदमी हाथ जोड़ कर उसके सामने खड़ा हो जाता और कहता था कि मेरे स्वामी का कैसा सुन्दर चेहरा है और उसके सामने नाचने लग जाता था। दूसरा माली कुछ बोलता नहीं था, किन्तु वह कार्य खूब करता था। सब प्रकार के फल और शाक भाजी पैदा करता और उनको अपने सिर पर स्वामी के पीछे बहुत दूर पहुंचा आता था। बस सोच देखो, इन दोनों मालियों में अपने स्वामी का कौन अधिक प्यारा होगा? बस शिव हमारा स्वामी है और यह संसार उसकी वाटिका है। इसमें दो तरह के माली हैं। एक तो आलसी है बनावटी है और कुछ काम नहीं करता है वह अपने शिव की नाक आंखो के सम्बन्ध में ही चर्चा किया

करता है। और दूसरा वह है, जो शिव के दीन दुःखी बच्चों और पशुओं की रखवारी और रक्षा करता है। इन दोनों में शिव का कौन प्यारा होगा? जो उसके बच्चों की सेवा करता है। जो पिता की सेवा करना चाहता है, उसको पहिले बच्चों की सेवा करनी चाहिये। जो शिवजी की सेवा करना चाहता है, पहले उसको शिव के बच्चों की तथा संसार की सेवा करनी चाहिये।

गीता में कहा गया है, जो परमेश्वर के सेवकों की सेवा करते हैं, वे उसके सब से बड़े सेवक हैं। बस इसी को अपने ध्यान में रक्खो। मैं पुनः कहता हूं कि यदि तुम पवित्र हो तो जो कोई तुम्हारे पास आवे, उसकी यथाशक्ति सहायता करो यही एक शुभ कर्म है, इस कर्म के बल से ही चित्त की शुद्धि होती है बस फिर जो शिव प्रत्येक मनुष्य के हृदय में रहता है स्पष्ट दिखलाई पड़ेगा। वह सदैव प्रत्येक हृदय में रहता है। यदि प्रतिबिम्ब (दर्पण) पर किसी तरह की मिट्टी और गर्द है, तो हम अपनी मूर्त्ति नहीं देख सकते हैं। अज्ञानता और पाप ही हमारे हृदय दर्पण पर मिट्टी और धूल है। यही स्वार्थ ख़ास पाप है कि पहले हम अपना विचार करते हैं। जो यह विचार करता है, पहिले मैं खाऊंगा मेरे पास दूसरे से अधिक रुपया होगा और सब पदार्थ पहले मेरे ही पास होंगे। जो यह विचार करता है मैं दूसरों से पहिले स्वर्ग को चला

जाऊंगा वह स्वार्थी मनुष्य है । निस्वार्थी मनुष्य कहता है मैं अपने भाइयों की सहायता करने से चाहे नरक को जाऊं मुझे स्वर्ग की परवाह नहीं है । यह निःस्वार्थ भाव ही तो धर्म का परीक्षण है । जिसका जितना निःस्वार्थ भाव है, वह उतना ही धर्मात्मा और शिवजी के निकट है, वह विद्वान् हो चाहे अविद्वान् वह चाहे इस बात को जानता हो, पर वह शिव के निकट अन्य व्यक्तिओं से विशेष है । स्वार्थी मनुष्य ने चाहे जितने मन्दिरों के दर्शन किये हों, चाहे जितने तीर्थ स्थानों में गया हो, कोढ़ी के समान उसने अपने को रङ्ग भी लिया हो, तब भी वह शिव से बहुत दूर है ।

लाहौर में भक्ति पर व्याख्यान देते हुए, उन्होने कहा था :—"वर्त्तमान समय में सब से अच्छा धर्म यह है कि प्रत्येक मनुष्य बाज़ार में जाय और वहां अपनी शक्ति के अनुसार एक दो छः बारह भूखे "नारायण" की तलाश करे । उन "नारायण" को सदैव स्मरण रखना चाहिये, हिन्दू धर्म के अनुकूल जिसको दान दिया जाता है वह दान दाता से बड़ा है । और उस थोड़े समय तक दान प्राप्त करनेवाला स्वयं परमेश्वर है ।" वास्तव में विचारा जाय तो स्वामीजी के उपर्युक्त कथन में कुछ अत्युक्ति नहीं है। आज इस देश में ऐसे अगणित नर नारियों की कमी नहीं है जो पापी पेट की ज्वाला से पीड़ित हो रहे हैं। निस्सन्देह इनकी क्षुधा निवृत्ति करना

परमात्मा की सृष्टि की रक्षा करना हैं पर जब कोई ध्यान दे तब न.?

स्वामीजी के उपर्युक्त कथन से दूसरा प्रयोजन यह निकलता है कि मनुष्य को अपना चरित्र संगठन करना चाहिये। बिना उज्वल चरित्र के इस संसार में सब धूल मिट्टी है।

अपने पर विश्वास रक्खो

स्वामी विवेकानन्द को भारतवासियों के स्वास्थ्य पर भी बहुत तरस आया है। स्वामी जी का कहना था और ठीक था कि शारीरिक बलहीन होने के कारण मस्तिष्क की शक्तियों का भी ह्रास हो जाता है। शारीरिक बल न होने से आत्मिक बल भी नहीं रहता है। भारतवासियों को अपने पर विश्वास नहीं रहा है, अपने एक व्याख्यान में उन्होंने कहा था:—"यदि सभी अङ्गरेज़ अपने लिये पापी समझ लें तो अफ़रीका के हबशियों से बढ़कर नहीं होंगे। परमेश्वर उन्हें अशीर्वाद दें कि वे ऐसा विश्वास नहीं करते हैं। इसके विपरीत प्रत्येक अंगरेज़ विश्वास करता है कि वह विश्व भर का मालिक पैदा हुआ है। वह समझता है—"मैं बड़ा हूं और संसार के सभी कार्य कर सकता हूं"।...हमारा अपने में विश्वास नहीं रहा है। हम अपने में अंगरेज़ मर्द और स्त्रियों की अपेक्षा बहुत कम विश्वास करते हैं। यह मेरे स्पष्ट शब्द हैं लेकिन मैं

कहने से बाज़ नहीं आसकता कि क्या तुम अङ्गरेज़ पुरुषों और स्त्रियों को नहीं देखते हो कि जब वे हमारे आदर्श को ग्रहण कर लेते हैं, तब वे पागल के समान हो जाते हैं। और यद्यपि वे शासक श्रेणी के हैं तथापि अपने देशवासियों के ताने मारने और ठठोलियों के करने पर भी भारतवर्ष में हमारे धर्म का प्रचार करने आते हैं। तुम में कितने मनुष्य अङ्गरेज़ों के समान कार्य्य करते हैं। तनिक विचारो तो सही कि इस का कारण क्या है? तुम इसका कारण नहीं जानते हो यह बात नहीं है कि तुम इसे जानते न हो, तुम उनसे अधिक जानते हो, तब फिर बात ही क्या है? तुम विशेष बुद्धिमान हो, यह तुम्हारे लिये अच्छा है। पर साथ ही तुम्हारी यह कठिनता भी है। क्योंकि तुम्हारा खून गन्धफिरोज़ा की नाईं है, तुम्हारा मस्तिष्क कीचड़ है, तुम्हारा शरीर दुर्बल है। शरीर को बदलो, यह भी बदल जायगा। शारीरिक दुर्बलता के अतिरिक्त इसका कारण और कुछ नहीं है। पिछले सौ वर्ष से तुम सुधार आदर्श और इन पदार्थों के विषय में चर्चा कर चुके हो और जब ये व्यवहार में आवेंगे तब तुम कहीं दिखलाई न पड़ोगे। तुम ने सारी दुनियाँ को हज़म कर लिया है और सुधार के नाम से समस्त संसार को माना है। इसका कारण क्या है? यह बात भी नही है कि तुम इसे न जानते हो इसका कारण तुम खूब अच्छी तरह जानते हो। इसका कारण

यह है कि तुम दुर्बल, दुर्बल महादुर्बल हो। तुम्हारा शरीर दुर्बल है, तुम्हारा हृदय दुर्बल है, तुम्हारा अपने में कुछ विश्वास नहीं है। शताब्दियों पर शताब्दी और एक हज़ार वर्ष तक कुचलने वाली अत्याचारी जातियों, राजाओं और विदेशियों ने और ख़ास तुम्हारे आदमियों ने तुम से समस्त शक्ति छीन ली है। मेरे भाई ' तुम कुचले हुये, टूटे हुये अस्थि माँस रहित कीट के समान हो। सोचते हो, अब हमको बल प्रदान कौन करेगा? मैं तुमसे कहता हूं शक्ति जो हम चाहते हैं प्रथम सीढ़ी उस शक्ति के प्राप्त करने की उपनिषद् हैं और विश्वास रक्खो कि मैं आत्मा हूं। "मुझे तलवार काट नहीं सकती, हवा मुझे सुखा नहीं सकती। मैं सर्वशक्तिमान हूं। सर्वदेशी हूं"। उन्होंने एक दूसरे स्थान पर कहा है:—हमारी सब यन्त्रणाओं की आधी जड़ दुर्बलता है"—"क्योंकि उपनिषदों का विशेष गौरव होने पर, हमारे ऋषियों का विशेष महत्व होने पर भी दूसरी जातियों से अपना मुकाबिला कर देखो, मैं तुम से स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि हम दुर्बल हैं और बहुत दुर्बल हैं। सब से पहिले हमारी शरीरिक दुर्बलता है। हमारी यंत्रणाओं का तीसरा हिस्सा यह शरीरिक दुर्बलता है। हम आलसी हैं हम काम नहीं कर सकते, हम मिल नहीं सकते, हम एक दूसरे को प्यार नहीं कर सकते। हम पूरे स्वार्थी हैं, हम एक दूसरे को घृणा किये बिना और

ईर्षा किये बिना नहीं रहते हैं। ऐसी दशा में हमने मनुष्यों को तितर बितर कर दिया है। हम इतने स्वार्थी होगये हैं कि इस बात पर शताब्दियों से लड़ रहे हैं कि अमुक चिन्ह किस ढंग से होना चाहिये। उन व्यर्थ के प्रश्नों पर जिनसे कुछ लाभ नहीं है कि अमुक मनुष्यों के देखने से हमारा भोजन बिगड़ जायगा बड़े बड़े पोथे लिख रहे हैं। पिछली कई शताब्दियों से केवल हमारा यही कर्तव्य रह गया है। जिस जाति ने ऐसी सुन्दर आश्चर्य जनक समस्याओं और पुरातत्व सम्बन्धी विषयों में अपने मस्तिष्क की सारी शक्ति को लगाया है वह जितनी वर्तमान उन्नति प्राप्त कर चुकी है उससे अधिक बढ़ने की आशा नहीं है और हमें इससे कुछ लज्जा भी नहीं आती है और हम इस विषय में कुछ विचार भी नहीं कर सकते हैं। हमें बहुत सी बातें विचारनी हैं पर विचार नहीं करते हैं, विवेचना संबन्धी हमारा स्वभाव तोते के समान होगया है इसका कारण क्या है? केवल एक शरीरिक दुर्बलता। अब हमारा मस्तिष्क कुछ करने योग्य नहीं रहा है। हमें इसका परिवर्तन करना चाहिये। हमारे नवयुवकों को बलवान होना चाहिये, सबसे पहिले बल यह ज़रूरी है धर्म पीछे आता रहेगा। मेरे नवयुवक मित्रों! पहले बलवान होओ मेरी सम्मति आपको है। गीता के मनन करने की अपेक्षा तुम स्वर्ग के निकट फुटबाल द्वारा शीघ्र पहुंचोगे यह शब्द अवश्य ही कड़े

होंगे जो मुझे तुमसे कहने हैं। मैं तुम्हें प्यार करता हूं, मैं जानता हूं कि बात कहां खटकती है। मैंने थोड़ा सा अनुभव प्राप्त किया है* तुम गीता अपने बाहुओं के द्वारा ज्यादा अच्छी समझ सकोगे। जब तुम्हारे पुट्ठे कुछ मजबूत होंगे तब गीता तुम्हारी समझ में बहुत अच्छी तरह से आवेगी, तुम अपने में जुशीला खून पाकर भगवान् कृष्ण की विलक्षण प्रतिभा और विलक्षण शक्ति को अधिक समझ सकोगे! जब तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों पर ही स्थिति होगा और जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे तब तुम्हारी समझ में उपनिषदों और आत्मा का महत्व बहुत अच्छी तरह से आजावेगा। बहुत से मनुष्य मेरे अद्वैत सम्बन्धी उपदेशों से बुरे विचार ग्रहण कर लेते हैं। मेरा इस संसार में द्वैत अद्वैत अथवा और किसी प्रकार के उपदेश करने का तात्पर्य नहीं है। मेरे कहने का प्रयोजन यही है कि हम आत्मा का उच्च भाव ग्रहण कर लें, उसकी अनन्त शक्ति, अनन्त बल अनन्त पवित्रता तथा उस की अनन्त पूर्णता को प्राप्त कर लें। इस भाँति उन्होंने राज योग के उपोद्घात में कहा है:—"जीवन में श्रेष्ठ पथ दर्शक बल है। धर्म में और सभी बातों में उस प्रत्येक पदार्थ को दूर कर दो, जो तुम्हें दुर्बल करता हो"।

भारत माता के होनहार नवयुवको! स्वामी जी के उप-

*ये शब्द ताना मारने के तौर पर कहे हैं।

युक्त शब्दों का यही तात्पर्य है कि अपने शारीरिक बल की वृद्धि करते हुए, मानसिक बलको भी बढ़ाओ। दुर्बलता के कारण तुम्हारे चरित्र में आत्मसम्मान और आत्मगौरव का जो भाव दूर हो गया है, उसको लाने का प्रयत्न करो। जिस रोज तुम अपने को समर्थ समझोगे, उसी दिन इस भारत माता का शोक सन्ताप दूर होगा। स्मरण रहे, शारीरिक निर्बलता भी महापाप है।

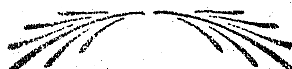
स्वामी जी ने "कर्म योग" नामक व्याख्यान में एक स्थान पर कहा थाः—"प्रत्येक मनुष्य के जीवन का उद्देश अर्थात् ज्ञान है। पूर्वीय दर्शन साहित्य ने केवल ज्ञान को ही मनुष्य का अभीष्ट सिद्ध किया है। जो लोग सुख या आरम्भ को मनुष्य-जीवन का उद्देश समझते हैं, वे बड़ी भूल में हैं। क्योंकि सुख का अन्त होता है और उसके पीछे दुःख अवश्यम्भावी है। संसार में जितने दुःखमय दृश्य दिखाई दे रहे हैं इन सब का कारण केवल यही है कि मनुष्य ने भ्रान्ति से सुख को अपने जीवन का उद्देश मान रक्खा है। थोड़े ही काल में ही विचार करने से मनुष्य को अनुभव होने लगता है कि उसकी गति सुख की ओर नहीं किन्तु ज्ञान की ओर है। हाँ सुख और दुःख दोनों अपने अपने स्थान पर शिक्षक का काम देते हैं। भलाई और बुराई दोनों से ही मनुष्य का अनुभव बढ़ता रहता है। इसी भांति उन्होंने अपने इस व्याख्यान में

यह उपदेश दिया हैः-

"वेदान्त की शिक्षा का सार यह है कि तुम स्वामी और स्वाधीन बन कर स्वामित्व और स्वाधीनता की दशा में काम करो। प्रकृति के सेवक और उपासक न बनो। काम सदा करते रहो। पर वह भृत्य का काम न हो। क्योंकि जो लोग दीन या अधीन होकर काम करते हैं, उनके काम में स्वार्थ की मात्रा अधिक होती है। काम स्वाधीनता और प्रेम के साथ होना चाहिये। जब तक स्वाधीनता न हो, तब तक सच्चा प्रेम हो ही नहीं सकता। दास में कभी सच्चा प्रेम न होगा। तुम उसे बन्धन में डाल कर काम लेते रहो, वह काम करता रहेगा, परन्तु उस का काम प्रेम पूर्वक न होगा।" इसी प्रकार जब तक हम अर्थों के दास एवम् मन और इन्द्रियों के अधीन होकर अपने लिये काम करते हैं, तब तक सच्चा प्रेम और विश्वास हमारे हृदय में उत्पन्न ही न होगा। ऐसा ही जो काम अपने सम्बन्धियों और मित्रों के लिये किया जाता है उसमें भी स्वार्थ है और जहाँ स्वार्थ है, वहीं बन्धन और दुःख है। केवल निष्काम कर्म में ही सच्चा प्रेम रहता है और जहां सच्चा प्रेम है, वहीं सच्चा सुख और सच्ची शान्ति है।

संसार के समस्त व्यवहार, मनुष्य समाज के सम्पूर्ण प्रस्ताव और हमारे आस पास जो कुछ हो रहा है। यह सब,

मनुष्य के विचार का फल और मानसिक शक्ति का चमत्कार है। यन्त्र या औज़ार, नगर या जहाज़ ये सब मनुष्य की विचार शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। यह विचार शक्ति चारित्र्य बल से बनती है और चरित्र का उत्पादक कर्म है। जैसा कर्म होगा, वैसा ही चरित्र बनेगा और जैसा चरित्र बनेगा, वैसी ही मानसिक शक्ति उत्पन्न होगी। संसार में बलवान् और प्रभावशाली वे लोग हुए हैं। जो बड़े बड़े काम करने वाले थे। इनकी मानसिक शक्ति भी विचित्र थी, जिससे आज की आन में संसार की काया पलट गई।"



तीसरा अध्याय

सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार

आइये पाठक ! चलिये हम स्वामी जी को राष्ट्रीय संसार में देख चुके हैं, अब सामाजिक संसार में देखें हमारे बहुत से पाठक सोचते होंगे कि स्वामी जी के अङ्गरेज़ी में बी० ए० पास करने और पश्चिमी देशों में भ्रमण करने से पश्चिमी विचार हो गये होंगे। पर यह बात नहीं है पश्चिमी सभ्यता से स्वामी जी की आंखें चकाचौंध नहीं हुई थीं। हिन्दू जाति की वर्त्तमान बहुत सी रीतियों में वे सुधार चाहते थे, पर पश्चिमी विचारों को लेकर नहीं बल्कि अपने ऋषि मुनि-प्रणीत शास्त्र पुराणों के आधार पर उन्होंने अपने व्याख्यानों में कई स्थानों पर यह बात स्पष्ट कही है कि पश्चिमी ढङ्ग के अनुकरण करने से भारतवर्ष को कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं है। उन्होंने मद्रास में सुधारकों को फटकारते हुए एक व्याख्यान में कहा था कि मैं वर्त्तमान सुधारकों से कहीं अच्छा हूं, जब वे छोटे २ टुकड़े को सुधारना चाहते हैं तब मैं जड़ और शाखा को सुधारना चाहता हूं, उनका कार्य्य नष्ट करने का है, मेरा रचना करने का, मैं सुधार में विश्वास नहीं करता बल्कि विस्तार में विश्वास करता हूं। मुझे अपने

को परमेश्वर की स्थिति में रखने और समाज को यह कहने की इस रास्ते चलो, उस रास्ते मत चलो, हिम्मत नहीं होती है। मैं राम के पुल निर्माण में एक गिलहरी के समान रहना चाहता हूं, जो थोड़ी सी मिट्टी ही पुल पर रखने में सन्तुष्ट हो गई थी। इस भांति स्वामी जी ने वर्त्तमान सुधारकों के प्रति असन्तोष प्रगट किया है। पर वास्तव में वे समाज सुधार के विरोधी नहीं थे। सब से पहले प्रत्येक सुधारक स्त्री शिक्षा की आवश्यकता दिखलाता है। स्वामी जी ने भी स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। पर साथ ही उनका कथन था कि स्त्रियों को अपने विषय में स्वयं ही विचार करना चाहिये। स्त्रियों के सम्बन्ध में उनके कथन का सारांश यह है:--"उनको बहुत सी गम्भीर समस्याएं हैं पर "शिक्षा" जैसे जादू के शब्द के अतिरिक्त और किसी से इसकी पूर्ति नहीं हो सकती है। सच्ची शिक्षा हम से किसी ने नहीं समझी। इसको शक्ति बढ़ानेवाली कहा जा सकता है न कि शब्दों का ढेर बस हमको भारतवर्ष में निडर स्त्रियों के लाने की आवश्यकता है। संयोगिता, लीलावती अहिल्या और मीरा बाई के समान स्त्रियां हो, स्त्रियां जो वीरों की माता होने योग्य हों। क्योंकि वे पवित्र, निस्वार्थ और बलवान भगवान के चरण छूने से जो शक्ति आती है, उस शक्ति सहित हों"। चिड़ चिड़े स्वभाव की स्त्रियां अपने पतियों

पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहतीं है। पर देखा जाय तो वास्तव में वे अपने नीच स्वभाव का परिचय देती है। ऐसी ही दशा उन पतियों की है, जो सदा अपनी पतिव्रता स्त्रियों में दोष ही ढूंढा करते हैं। सदाचार स्त्री और पुरुष दोनों का भूषण है। परन्तु वह बिना दोनों के सच्चे प्रेम के कभी रह नहीं सकता है, जो पुरुष सदाचार से भ्रष्ट हो गये है, उनको धर्म के मार्ग पर लाना यद्यपि कठिन काम है, तथापि उनकी स्त्रियां यदि पतिव्रता और सदाचारिणी हों तो बहुत कुछ उन पर अपना प्रभाव डाल सकती है। इसी प्रकार धर्मात्मा और स्त्री व्रत-पुरुष भी अपने सुचरित्र से अपनी कर्कशा और स्वैरिणी स्त्रियों का सुधार कर सकते है। पवित्रता और धर्म परायणता दुष्टता को दबा सकती है। यदि स्त्री सदाचारिणी है और अपने पति के सिवा संसार के समस्त पुरुषों को अपने पुत्र भाई या बाप के तुल्य समझती है, तो स्मरण रक्खो एक भी ऐसा पुरुष न मिलेगा, जिसको उसे कुदृष्टि से देखने का साहस भी हो सके। इसी प्रकार जो पुरुष सिवा अपनी स्त्री के अन्य सबको मां, बहन और पुत्री की दृष्टि से देखता है, कोई भी स्त्री उसको अपने धर्म से पतित न कर सकेगी। संसार में जो पुरुष शिक्षक या उपदेशक होने का अभिमान करते हैं, कम से कम उनको तो "मातृवत् परदारेषु" इस आप्त वाक्य पर अपना विश्वास अपने आचरण से दिखलाना चाहिये।

स्त्री शिक्षा के अतिरिक्त अछूत जातियों के प्रति जो स्वामी जी के हृदय में स्थान स्थान पर दया का श्रोत बहा है। स्वामी जी मदरास में बहुत रहे थे और मदरास में ही अछूत जातिओं के प्रति बहुत कड़ाई है। इसलिये उन्होंने अछूत जातियों के प्रति बुरे बर्ताव की निन्दा की है। उनका कथन था कि भारतवर्ष में मुसलमानों की विजय, पददलित दीनों के लिये मुक्ति थी। यही कारण है कि हमारी जातियों में से पांचवां हिस्सा मुसलमान हो गया था। यह सब तलवार के बल से नहीं हुआ। यह ख्याल करना कि यह तलवार के बल से हुआ है, हमारे पागलपन की सीमा है। यदि तुम इस (पददलित जातिओं के उठानें) की परवाह न करोगे तो पांचवां हिस्सा क्या बल्कि तुम्हारे मदरास के आधे लोग ईसाई हो जांयगे। क्या इससे बढ़कर भी कोई अज्ञानता दुनियाँ में होगी जो मैंने मालावार में देखी थी एक * पेरिया को उस गली में जाने की आज्ञा नहीं है। जिसमें एक उच्च जाति का मनुष्य जा सकता है। इतना कहकर आगे स्वामी जी ने मालावारियों को पागल और उनके घरों को पागल खाना बतलाया है। आगे उन्होंने कहा है---धिक्कार ? तुम अपने बच्चों को खुद भूखा मरने देते हो और जब वे बच्चे दूसरों के पास चले जांय तो उनको भोजन करा के बलवान

* पेरिया—मदरास में एक नीच जाति है।

करते हो अब जातियों के विषय में बहुत विवाद नहीं होना चाहिये। इसका निर्णय उच्चों को नीचे गिराने से नहीं होगा परन्तु नीचों को ऊपर उठाने से होगा......एक ओर आदर्श ब्राह्मण है तो दूसरी ओर आदर्श चाण्डाल है। इस लिये चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण तक को उठाने का कार्य होना चाहिये। इस भांति स्वामीजी जाति पांति तोड़ना तो नहीं चाहते थे पर प्रत्येक जाति का सुधार अवश्य चाहते थे। कहीं २ प्रकरणान्तर में जाति पांति की निन्दा की है। इस विषय में आगे उन्होंने और भी कहा है :—"मैंने अपने जीवन में देखा है बहुत सी जातियां बलवान हो गई हैं"। ऐसे ही एक दूसरे स्थान पर उन्होंने वर्तमान समाज सुधारकों के रामानुज, शङ्कर कबीर, नानक, दादू, चैतन्य आदि की तरह से सुधार करने की सलाह दी है। और भी कई स्थानों पर अछूत और पद दलित जातियों के सुधारने की सलाह दे दी है।

विधवा विवाह के प्रति स्वामीजी ने खुल्लमखुला न तो सहानुभूति दिखलाई हैं न निन्दा की है। पर कई स्थानों पर दबी ज़बान से इसको अच्छा नहीं समझा है। जैसे एक स्थान पर लिखा है :—'स्मरण रक्खो ! जाति झोपड़ों में रहती है किन्तु शोक ! किसी ने उसके लिये कुछ न किया। हमारे वर्तमान सुधारक विधवा विवाह के सम्बन्ध में बहुत व्यस्त हैं। निस्सन्देह मुझे प्रत्येक सुधार में सहानुभूति है, किन्तु

जाति का विशेष भाग्य विधवाओं को पति मिलने पर निर्भर नहीं है। किन्तु सर्वसाधारण की स्थिति पर है। क्या तुमने उनको उठाया है ? बस इस भांति कहीं कहीं उन्होंने विधवा विवाह के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्गार निकाले हैं।

स्त्री शिक्षा, अछूत जाति और विधवा विवाह के अतिरिक्त आज कल नये और पुराने विचार के लोगों में विलायत यात्रा के सम्बन्ध में भी बहुत आन्दोलन होता है। स्वामी जी विदेश यात्रा के प्रबल पक्षपाती थे। अन्यत्र उन्होंने जापान से जो चिट्ठी भेजी थी वह प्रकाशित है। उससे यह स्पष्ट पता लगता है कि स्वामी जी विदेश यात्रा के कितने पक्षपाती थे, पर उन्होंने और भी कई स्थानों पर विदेशी यात्रा की स्पष्ट सम्मति दी है। उन्हें भारतवासियों का "कूप मण्डूक" रहना पसन्द नहीं था। उनका कथन था कि भारतवर्ष से बाहर बिना दुनियां की सैर किये हम कुछ नहीं कर सकते हैं। जितने बाहर तुम जाओगे और जितना संसार की जातियों में घूमोंगे उतना ही तुम्हारे देश के लिये अच्छा है"। इसके आगे कहा है जीवन का चिन्ह विस्तार है हमको बाहर जाना चाहिये विस्तार करो जीवन दिखलाओ अथवा गलो सड़ो और मरो"। इसमें और कोई परिवर्तन नहीं है। उन्होंने अपने एक स्थान में भी लिखा है "भारतवर्ष के भाग्य पर उसी दिन से छाप लग गयी थी, जिस दिन से भारतवासियों ने म्लेच्छ शब्द का

आविष्कार किया और दूसरों से मिलना जुलना बन्द कर दिया"। इसके अतिरिक्त सुना जाता है "कि स्वामीजी यहां तक तैयार थे कि जो लोग हिन्दू धर्म को ग्रहण करना चाहें उनको अपने में मिला लेना चाहिये।"

नये और पुराने लोगों में खान पान सम्बन्धी छूत छात का भी विवाद चला आता है। स्वामीजी के खान पान (भोजन) सम्बन्धी अत्यन्त स्वतन्त्र विचार थे। उन्होंने अपने व्याख्यानों में खाने पीने की छूत छात का तीव्र भाषा में खंडन किया है। भोजन सम्बन्धी वर्तमान छूत छात के विषय में उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा था—"उन पुराने विवादों को उन पुरानी लड़ाईयों को जो व्यर्थ की हैं छोड़ दो। छः सौ अथवा सातसौ वर्ष की अवनति के विषय में ख्याल करो कि वर्षों बड़े आदमी इस बात का ही विवाद करते रहे कि हमको बायें हाथ से जल पीना चाहिये अथवा दाहिने हाथ से हाथ चार बार धोना चाहिये अथवा पांच बार और हमको पांच बार कुल्ला करना चाहिये या छः बार। उन आदमियों से तुम क्या आशा कर सकते हो जो ऐसे व्यर्थ के प्रश्नों के विचार में अपना जीवन व्यतीत करते हैं और ऐसे प्रश्नों पर विद्वतापूर्ण दार्शनिक विचार लिखते हैं। हमारे धर्म का रसोई गृह में परिणित हो जाने का भय है। अब हम में से न तो कोई वेदान्ती है न पौराणिक है न तान्त्रिक है। हम ठीक हैं मत छुओ, अस्पर्श हैं,

हमारा धर्म रसोई गृह है। हमारा परमेश्वर रसोई का वर्तन है और हमारा धर्म "मुझे मत छूओ मैं पवित्र हूं" है यदि यह दशा एक शताब्दी तक और रही तो हम में से सब पागल खाने में होंगे। मस्तिष्क के दुर्बल होने का यह प्रत्यक्ष लक्षण है कि जब हृदय जीवन की बड़ी समस्याओं को ग्रहण नहीं कर सकता है और जब समस्त मौलिकता नष्ट हो गई हृदय ने सारी शक्ति फुर्ती और विचार शक्ति खोदी है। तब तो मस्तिष्क जहां कहीं छोटे से छोटा झुकाव पाता है वही घूमना चाहता है।

अपने एक पत्र में स्वामी जी ने लिखा है:—आज कल जड़ सुधार के विरुद्ध बोलना हमें बहुत सहज मालूम होता है। पर यह भौतिक सुधार हमें क्यों नहीं चाहिये इसलिये कि अंगूर खट्टे हैं। क्षण भर के लिये मान भी लिया जाय कि यह सुधार सचमुच ही धार्मिक उन्नति में बाधा डालता है तथापि काया वाचा और मन से केवल आध्यामिक उन्नति के पीछे पड़े हुए आज कितने सच्चे महात्मा भारत में हैं? यदि कहा जाय कि ऐसे मनुष्य एक लाख हैं तो बहुत समझ लो अब क्या तुम्हारा यह कहना है कि इन एक लाख मनुष्यों के लिये तीस करोड़ लोग बैठे रोते रहें। मुसलमानों ने चढ़ाइयां करके भारत को क्यों पादाक्रान्त किया? उसका कारण यही है कि भौतिक सुधार में हम लोग बिलकुल पिछड़ रहे थे। अच्छी तरह से कपड़े पहनना तक हम लोगों ने मुसलमानों ही

से सीखा है। साधारण ऐहिक सुधार ही नहीं, किन्तु मैं जो भोग विलास तक की तरफ़दारी करूंगा। क्योंकि उसमें गरीब लोगों को नवीन २ व्यवसाय मिलते हैं। कुछ लोगों के ऐश आराम के कारण ही बहुत लोगों की रोटियां तो चलती हैं। मरने के बाद तो हमें सारे स्वर्ग भोग मिलेंगे और जब तक संसार में रहेंगे तब तक खाने को रोटी भी न मिले। यह कहां का न्याय है? यह जिस ईश्वर का न्याय है उसे मैं ईश्वर ही नहीं समझता। भारत का यदि कभी सच्चा सुधार होने-वाला होगा तो वह भौतिक सुधार ही से होगा इसके बिना अब तो काम ही नहीं चल सकता। अधिक अधिक विद्यादान अधिक उद्यम व्यवसाय अधिक भोजन और फिर अधिक शरीर सामर्थ्य यही उन्नति की सीढ़ियां हैं। अच्छा तो फिर धार्मिक विषयों में रुढ़ि बद्ध हुये पुरोहित वर्ग और उनकी पैदा की हुई रुढ़ियों का संहार होना चाहिये। अंगरेज़ों से अधिक अधिकार मांगने के लिये सभाएं करने में आज कल युवा पुरुष दिलोजान से लगे हैं। परन्तु अंगरेज़ लोग मन ही मन तुम्हारी इन सभाओं पर हंस रहे हैं। जो लोग हानिकारक रुढ़ियों की श्रृङ्खला से जकड़ कर दूसरों को गुलाम बनाते हैं वे क्या स्वयं स्वतन्त्र रहने के योग्य कभी हो सकते हैं। अंगरेज़ लोग यदि कल अपनी खुशी से भारत को छोड़ कर चले जांय तो भी तुम्हें वास्तव में लाभ क्या हो सकता है?

तुम्हारी अयोग्यता तुम्हें उस स्वतन्त्रता का उपयोग कभी नहीं करने देगी रूढ़ियों के दास्य पङ्क में लोटनेवाले गुलामों! तुम स्वतन्त्रता मांगते हो क्या और नये गुलाम तैयार करने के लिये!

स्वामीजी के हृदय में भारतवासियों की आर्थिक स्थिति और दरिद्रता को देख कर बहुत शोक उत्पन्न हुआ है, उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा है:—"चीन और भारतवासियों की मृतक सभ्यता में रहने का एक कारण उनकी अत्यंत दरिद्रता भी है। सदैव साधारण हिन्दू और चीनी को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के अतिरिक्त किसी दूसरे विषय के विचार करने का अवकाश मिलता ही नहीं हैं"। समझे पाठक! स्वामी विवेकानन्द जी के व्याख्यानों और पत्रों में समाजिक विचारों की प्रत्येक स्थल पर ऐसी झलक प्रतीत होती है। अब हम इस विषय में कुछ नहीं कहेंगे कि स्वामी जी समाज सुधार के पक्ष में थे अथवा विपक्ष में। इसका निर्णय सहृदय पाठक स्वयं करें।

चतुर्थ परिच्छेद



धार्मिक विचार

हिन्दुओं की वेदों पर विशेष भक्ति और श्रद्धा है। जो धर्म प्रचारक खड़ा होता है वह वेदों का ही आसरा लेता है बिना वेदों का आसरा लिये कोई धर्म प्रचारक हिन्दुओं में अपना सिक्का नहीं जमा सकता है। चाहे उसकी वेदों पर भक्ति और श्रद्धा न हो तिस पर भी उसको वेदों की शरण लेनी पड़ती है। सच्ची और सही बात के कहने के लिये पाठक मुझे क्षमा करें। मैंने एक ऐसे समाज के भीतर पहुंच कर देखा है जो संसार भर में वेदों के प्रचार करने का दावा भर रहा है और उसके नेता तथा अन्य उपदेशक गण अपनी वाणी और लेखनी द्वारा सर्व साधारण हिन्दुओं की वेदों पर श्रद्धा उभारने की चेष्टा कर रहे हैं पर उनमें से कतिपय सज्जन न तो वेदों के अनुयायी हैं न वेदों पर भक्ति और श्रद्धा रखते हैं। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि वेद पर भक्ति प्रकट किये बिना न तो वे अपने इन्स्टीट्यूशन चला सकते हैं न सर्व साधारण में वे अपना सिक्का जमा सकते हैं। यों वे पब्लिक को अन्धकार में रखकर स्वयं नेता बने हुये हैं। परमा-

त्मन्! ऐसे ढकोसलेबाज़ नेताओं से रक्षा कर और सर्व साधारण में ज्ञान की ज्योति का इतना विस्तार कर जिससे उनको अपने समाज के नेताओं की ढकोसलेबाज़ियों का पता लगे।

स्वामीजी का कथन था कि वेदान्त वेद का ही निचोड़ है वह वेद से परे वेदान्त को नहीं समझते थे। वेदों के विषय में जो कुछ उनकी सम्मति थी, उसका अर्थ यह है—वेद तीन बातें सिखलाते हैं पहिले उनको सुनना तब विचारना और उन पर सोचना। पहिले जब आदमी सुनता है तो उसको उस पर विचारना चाहिये उसको केवल अज्ञानता से विचार नहीं करना चाहिये पर खूब जानकर और फिर विचार करके कि वह क्या है, उस पर ध्यान देना चाहिये। तब पहिचानना चाहिये यही धर्म है। विश्वास धर्म का कोई अङ्ग नहीं है। हम कहते हैं धर्म सचेत अवस्था में होता है। वास्तव में विचारा जाय तो स्वामीजी के इस कथन में कुछ अत्युक्ति नहीं है। जब हम सांसारिक विषयों में बहुत सी छान बीन करते हैं तब धर्म के विषय में केवल अन्ध विश्वास के सहारे रहना कहां का न्याय है। "पानी पीजे छान, गुरू कीजे जान" इस लोकोक्ति के अनुसार धर्म सम्बन्धी किसी विश्वास को समझे सोचे बिना आज्ञानता पूर्वक ग्रहण नहीं करना चाहिये। क्योंकि धर्म के समान कोई सच्चा सखा नहीं है स्वामीजी वेदों

को अनादि मानते थे। द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत में परस्पर कुछ विरोध नहीं देखते थे। उनका कथन था कि यह तीनों एक ही हैं अद्वैत द्वैत का प्रतिवादी नहीं है द्वैत तीनों सीढ़ियों की सिर्फ़ पहली सीढ़ी है। धर्म में सदैव तीन सीढ़ी होती हैं पहली द्वैत है और अन्त में वह अपने को सार्वभौम के साथ देखता है। इसलिये तीनों आपस में प्रतिवादी नहीं बल्कि एकही उद्देश को पूरा करते हैं। स्वामी जी संसार से विरक्त रहना बुरा समझते थे। उनका कथन था कि जब प्रति समय तुम्हारा हृदय संसार की ओर जाता है तब तुम सच्चे वेदान्ती हो। वेदान्त एक ऐसा दर्शन है जिसने मनुष्य को पूरी तरह से नीति सिखलाई है। यहाँ सब धर्मों का निचोड़ है वेदान्त की शिक्षाओं के सम्बन्ध में उनका यह कहना था कि यह न तो निराशावादी (Passimistic) है न आशावादी (Optimistic) है। वेदान्त इन दोनों की ही शिक्षा देता है और जिस तरह के पदार्थ हैं वैसा ही बतलाता है। यह संसार दुःख सुख हर्ष और विषाद मिश्रित है। एक को बढ़ाइये और भी उसके साथ बढ़ेगा 'यह ससार न तो अच्छा ही है न बुरा ही···प्रत्येक युग में माया के विषय में समझाना बहुत कठिन है। निस्सन्देह यह कोई थ्योरी (कथनात्मक) नहीं है। देश काल पात्र यह तीनों विचार इस में मिश्रित हैं जो आगे नाम रूप में घट गये हैं। यह थ्योरी कल्पनात्मक अथवा

कथनात्मक नहीं बल्कि सच्ची है। भक्ति योग नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है:---"मनुष्य पुस्तकों के सहारे सच्ची आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता है। इसके लिये गुरु की आवश्यकता है। स्वामी जी ने भक्ति योग नामक पुस्तक में गुरू और शिष्य में कितने आवश्यक गुणों का प्रयोजन है, यह दर्शाया है। अवतार और मूर्त्ति पूजा को भी माना है। मूर्त्ति पूजा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है :---तुम सबही मूर्त्ति पूजक हो और मूर्त्ति पूजा अच्छी है। क्योंकि यह मनुष्य स्वभाव के संगठन में है इसके परे कौन जा सकता है केवल पहुंचे हुये मनुष्य और महात्मा लोग, शेष सब मूर्त्ति पूजक हैं।

आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का कथन था कि सार्वभौम धर्म केवल वेद ही की शिक्षायें हैं। स्वामी विवेकानन्द जी का भी कथन था:--"All the other religions of the world are included in the nameless, limitless, eternal Vedic religion" अर्थात् संसार के सभी धर्म नाम रहित असीम अनादि वैदिक धर्म में सम्मिलित हैं। स्वामी जी का कथन था कि कभी किसी भी दूसरे के धर्म सम्बन्धी विश्वासों के प्रति विरोध न करना चाहिये। संसार में जितने धर्म हैं वे एक दूसरे के न तो विरुद्ध हैं न शत्रु हैं एक ही अनन्त धर्म की बहुत सी शक्लें हैं। एक अनादि धर्म ही सदैव स्थित

रहेगा। यह धर्म अनेक देशों में अनेक ढङ्ग से प्रकट हो रहा है। इसलिये हमें सब धर्मों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। इस प्रधान रहस्य को समझने के लिये सच्चाई होनी चाहिये। किसी मत (धर्म) के द्वेषी होने की अपेक्षा हमारी समस्त धर्मों से असीम सहानुभूति होनी चाहिये।

योगाभ्यास पर स्वामी जी

स्वामी जी ने एक स्थान में व्याख्यान देते हुये कहा था कि योग का अभ्यास प्रत्येक पुरुष के लिये वैसा ही आवश्यक है जैसा कि शरीर के लिये भोजन। परन्तु मनुष्य इस ओर से अत्यन्त उदासीन हो गये है क्योंकि योग का फल वे तुरन्त प्राप्त करना चाहते हैं। फल के तुरन्त न प्राप्त होने से वे इससे सदैव के लिये पराङ्मुख हो जाते हैं। ऐसे मनुष्यों के लिये स्वामीजी का कथन है कि–साधारण यूनीवर्सिटियों की डिग्री पाने के लिये जब तुम १४ या १६ वर्ष तक लगातार परिश्रम करते हो जिसके द्वारा कि तुम संसार-सागर में अपनी जीवन नौका खेना चाहते हो भला बताओ तो सही साधारण डिग्री पाने के लिये तो तुम १४ या १६ वर्ष तक शान्ति पूर्वक उसी में लगे रहते हो और फिर परमानन्द प्राप्ति के लिये तुम्हें परिश्रम करते हुये कितने समय तक फल की प्रतीक्षा करनी उचित है?

जो कुछ कार्य मैंने किया है उसका मूल तत्व योग है और यह मेरे केवल दस वर्ष के परिश्रम का फल है जिसे कि मैं कुछ नही के बराबर समझता हूं।

दूसरे वे मनुष्य पराङ्मुख हैं जो प्रारम्भ से ही इसे अत्यन्त दुष्कर एवं कठिन तथा संसारिक जनों के लिये असाध्य समझते हैं। पर वास्तव में यह बहुत सरल है केवल शान्ति पूर्वक परिश्रम करने की आवश्यकता है। फिर तुम देखोगे कि तुम ही जगत के सच्चे स्वामी हो तुम्हारी ही आज्ञा एवं इशारों पर यह ब्रह्मण्ड घूमता है।

* आगे स्वामी जी ने योग के तीन विभाग किये हैं (१) कर्म्म-योग (२) भक्ति योग (३) राज योग।

कर्मयोग

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

[गीता]

निष्काम एवं संन्यास भाव से किये हुये (To work without motive and unattached) कर्म को कर्म योग कहते हैं।

निष्काम कर्म करने का क्या अर्थ है? कुछ कहते हैं कि मनुष्य इस प्रकार से कर्म्म करे कि आनन्द अथवा दुःख उसके

*तीनों योगों पर स्वामी जी ने बहुत कुछ कहा है जिसका स्थानाभाव से सम्पूर्ण उल्लेख करना अत्यन्त कठिन है केवल उसका सारांश दिया गया है—सम्पादक

चित्त को स्पर्श न कर सकें। यदि वास्तवमें यह हो अर्थ है तो पशु भी निष्काम कर्म करते हैं। कुछ पशु जैसे सर्पादि अपने ही बच्चों का भक्षण कर लेते हैं और इसके करने में उनको कोई दुःख नहीं होता। लुटेरे मनुष्यों को लूटते हैं और यदि उनको इसमें आनन्द अथवा दुःख कुछ नहीं हो तो वह भी निष्काम कार्मयोगी कहे जा सकते हैं। यदि यही अर्थ है तो वह मनुष्य जिसका कड़ा दिल है निष्काम कर्मकर्त्ता हो सकता है चाहे वह घोर पापीही क्यों न हो। यदि यही तात्पर्य है तो भगवद्गीता द्वारा एक बड़े भयंकर सिद्धान्त का प्रचार किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि गोता कर्मयोग की दीक्षा देती है। योग द्वारा कर्म करने से अहंभाव कभो प्रवेश नहीं करता कोई भी अच्छा कर्म बुराई के लवलेश से शून्य नहीं है। जैसे अर्जुन ने भीष्म और द्रोणाचार्य को मार कर पाप कमाया था, किन्तु यदि उसने यह न किया होता तो दुर्योधन पर विजय न पाता और पाप की पुण्य पर विजय हुई होती, देश पर अत्याचारी राजाओं का राज्य होता। अथवा हम गोता का पाठ दीपक जला कर करते हैं परंतु अनेक कीड़ों का संहार रूप पाप हो ही जाता है। इसो लिये कहा है कि जो जो अहंभाव को तज कर कर्म करते हैं उन पर पाप का प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि वह संसार के कल्याण के लिये कर्म करते हैं। निष्काम कर्म करना (To work unattached,)

उच्चतर श्रेणी के आनन्द और स्वतंत्रता को देता है।

—:०:—

भक्तियोग

भक्तवश्योऽहं सर्वदा

केवल भक्त ने ही मुझे अपने वश में कर लिया है।

[गीता]

भक्ति योग भगवान की सच्ची खोज एवं अनन्त प्रेम-सागर के जल की अतृप्त तृष्णा है। जब तक सांसारिक इच्छायें हैं तब तक अनन्त प्रेम का उत्पन्न होना असंभव है। भक्ति कर्म एवं योग से बढ़ कर है क्योंकि इनका एक लक्ष्य है और भक्ति कुछ नहीं चाहती। भक्ति का मार्ग और फल भक्ति ही है। भक्त का प्रेम, प्रेम के लिये ही होता है सांसारिक अथवा पारमार्थिक कामना के लिये नहीं। शांडिल्य, नारद तथा अन्य ऋषियों ने भक्ति पर बड़ी व्याख्या की है। भक्ति-योग की दो श्रेणी हैं पहिली गौणी और दूसरी परा*। गौणी भक्ति कभी२ निन्दनीय होती है क्योंकि प्रत्येक मत तथा देश में ऐसे मनुष्य होते हैं जो कि दूसरों के इष्ट देवों की निन्दा करना ही अपनी भक्ति का मार्ग समझते हैं। परंतु सच्चा भक्त वह है जो कि

---

* गौणी भक्ति आरम्भिक अभ्यास दशा को कहते है और परा पहुंची हुई परमहंस दशा का नाम है। सम्पादक

अनेक मत मतान्तरों को परमेश्वर के पाने के लिये अनेक मार्ग समझता है। अतएव भक्त को दूसरे मतों के आचार्यों की निन्दा करना ही नहीं परन्तु सुनना भी निषेध है।

भक्त के हृदय में तो प्रेम की अनन्त ज्वाला जलती रहती है जिससे उसे दूसरों के मतों की परवाह ही नहीं रहती, उसके लिये तो भौंरे, चातक, कमल और पतंगे ही आदर्श हैं जो प्रेम की पिपासा को बुझाने के लिये अपने जीवन को बात की बात में स्वाहा कर डालते है।

प्रेम का अन्त तन्मय और तद्वत् होना ही है तभी तो दीपक की जलती शिखा में पतङ्गे तन्मय और तद्वत् होने के लिये दौड़े चले आते हैं और भष्मावशेष रह जाते हैं भक्त को भी अपने उपास्य देव के अतिरिक्त और कोई धुन नहीं रहती हैं ऐसी हालत में मनुष्य उसे परमहंस के नाम से पुकारते हैं।

भक्त भक्ति-योग की उच्च दशा में पहुंच कर अपने इष्ट देव में लीन हो जाता है और तब भक्त और परमेश्वर में कोई अंतर नहीं रहता। जो कि एक प्रकार की समाधि दशा है। गोपियाँ जब तक "उपास्य उपासक" अथवा "अहं—त्वम्" भाव को भूली रहीं तब तक सब कृष्ण ही रहीं परंतु जब उन्होंने अपने इष्ट देव श्री कृष्ण को एक अलग वस्तु करके माना तब—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ।।

अर्थात्—भगवान कृष्ण साक्षात् कामदेव प्रतीत होने लगे भक्त कभी २ अपने इष्ट की एक स्थूल मूर्ति मान कर पूजा करता है। परन्तु उसमें सदैव भाव यही रहना चाहिये कि—

अब्रह्माणिब्रह्मदृष्टयाऽनुसन्धानम् ।

अर्थात्—जो ईश्वर नहीं है इसमें ईश्वर की दृष्टि से केवल खोज मात्र कर रहा हूं।

भगवान कृष्ण ने भक्ति योग पर गीता में कहाः—

मांच येऽव्यभिचारेण भक्तियोगन सेवते।
सगुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

अर्थात्—जो पुरुष नियत अचल भक्ति-योग से मेरी सेवा करता है वह इन सत्वादि गुणों के बन्धन से छूट कर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

राज योग

तमेवविदित्वातिमृत्युमेति

इसको जानकर मनुष्य मृत्यु पर विजय पा सकता है

[उपनिषद्]

राज योग मस्तिष्क द्वारा शरीर के आन्तरिक व्यवहार की खोज करने का विज्ञान है। मस्तिष्क की शक्ति रोशनी

की किरणों के समान है जो एकत्रित होने पर अधिक प्रकाश करने लगती है।

किसी वस्तु में तब तक विश्वास न करो जब तक यह न जान लो कि उससे क्या शिक्षा मिलती है। वृक्ष की बाल्यावस्था में उसके चारो ओर कांटे लगा कर उसकी रक्षा करने की आवश्यकता होती है। परन्तु जब वह बढ़ कर पूरा वृक्ष हो जाता है तब कांटे लगाना व्यर्थ है। अतएव योगी को योगाभ्यास की प्रथम श्रेणी में सांसारिक प्रलोभनों से बचना अत्यावश्यक है। योगाभ्यास के सिद्ध होने पर सांसारिक प्रलोभन उसे स्पर्श तक नहीं कर सकते। योगी को हठ योग द्वारा शरीर को कष्ट पहुंचाना एवं सांसारिक ऐश व आराम में पड़ा रहना न चाहिये। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं:—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति नचैकान्तमनश्नतः।
नच्चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैवचार्जुन॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

अर्थात्—हे अर्जुन! अधिक खाने वाले या कुछ न खाने वाले, अधिक वा प्रायः सोने वाले या अधिक जागने वाले पुरुष का योग सिद्ध नहीं होता—किन्तु आहार, विहार एवं कर्तव्य कामों में नियत समय तक चेष्टा करने वाले और नियत समय तक सोने तथा जागने वाले पुरुष का योग क्लेश

को दूर करने वाला हो जाता है।

राज योग की आठ श्रेणियां होती हैं।

यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ [योगदर्शन, पाद २, सू० २६]

(१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) ध्यान (७) धारणा (८) समाधि,

(१) इनमें यम ये हैं—

तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

[योगदर्शन, पाद २, सूत्र ३०]

अर्थात् अहिंसा, सत्य, पराई वस्तु का तिरस्कार ब्रह्मचर्य एवं विषयों का संग्रह न करना।

(२) नियमः—

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

योग० पाद २, सूत्र ३२ ॥

अर्थात् स्वच्छता, संन्तोष, शारीरिक कष्ट सहने की शक्ति, अध्ययन तथा ईश्वरोपसना।

(३) आसन, (४) प्राणयाम, (५) प्रत्याहार अर्थात् जिसमें चित्त इन्द्रियों के सहित अपने विषय को त्याग कर केवल ध्यानावस्थित हो जाय, (६) ध्यान, (७) धारणा (८) समाधि अर्थात् तन्मय एवं तद्गत होकर मग्नावस्था

यम और नियम आचरण परिशोधक (Moral trainings)

हैं। इनकी सिद्धि होने पर योगी को मन वचन एवं कर्म से अहिंसा वादी होना चाहिये। योगी की दया समस्त संसार को आलिङ्गन करने योग्य है। योगाभ्यास करने में शरीर के भीतर अनेक क्रियायें होती रहती है। नाड़ियो पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। उनमें नवीन प्रकार की तरङ्गों की सो हल चल होने लगती है।

परन्तु विशेष क्रिया शुशुम्नानाड़ी (Spinal column) के द्वारा होती है। अतएव इसको आसन में सीधा रखना अत्या-वश्यक है। इस ढंग से बैठना चाहिये कि वक्षस्थल, ग्रीवा और मस्तक सीधे रहें, हठयोग की अनेक क्रियायें योगाभ्यास में सहायता दे सकती है उदाहरणार्थ, मस्तिष्क पीड़ा के लिये प्रातःकाल उठते ही नथनों द्वारा पानी खींचना दिन भर मस्तक को ठंडा और शांत रखेगा, और शीत से रक्षा करेगा। प्राणायाम विधि पूर्वक दिन में चार बार करने से एक मास के बाद शारीरिक बाधाऐं दूर हो जाती हैं। अभ्यास के लिये एक कोठरी अलग होनी चाहिये जिसमें पुष्प और मनोहर तथा उच्च भाव दर्शक चित्र लगे हों। इस कोठरी में शारी-रिक एवं मानसिक पवित्रता के बग़ैर कभी प्रवेश न करना चाहिये। इस में वही मनुष्य आवे जिसके योगी के समान विचार हों, मन को अविचल अवस्था में रखने के लिये "ॐ" शब्द का प्राणायाम में बारम्बार प्रयोग करना लाभदायक

प्रतीत होगा, प्राणायाम करने का सुगमतर मार्ग यह है कि अंगूठे से दहिने नथने को दबा कर बांयें द्वारा धीरे २ सांस खींचे। और फिर अंगूठा और अगुली से दोनों कथनों को दबा कर सांस को नीचे उतार कर शुशुम्ना के नीचे तक पहुंचाने की कल्पना करे। सांस को ज्यादा न रोक कर अंगूठे को दबा कर दहिने नथने द्वारा धीरे २ निकाल दे। यह नित्य द्रढ़ता पूर्वक करना उचित है। ब्रह्मचर्य सेवक मनुष्य अथवा स्त्री ही ओजस को चढ़ा कर वीर्य को मस्तक में एकत्रित कर सकते हैं। यही कारण है कि ब्रह्मचर्य सदैव से धर्म का एक मुख्य अङ्ग समझा गया है। प्राणायाम के पश्चात् प्रत्याहार अर्थात् इन्द्रिय निग्रह की श्रेणी है। चित्त को एक चीज़ अथवा स्थान पर एकाग्र करने को धारण कहते हैं। प्रत्याहार की ही बढ़ी हुई अवस्था का नाम ध्यान है। जब चित्त अहंभाव के सीमा को लाँघ जावे, तब उसको समाधि कहते हैं ध्यान, धारणा और समाधि को संयम के नाम से भी पुकारते हैं। बस इसी ढंग से तन्मय, तद्रत, तल्लीन एवं उसी में मग्न हो जाना चाहिये राज योग में इन्ही नियमों पर आचरण करना आवश्यक है— ऐसा दो वर्ष अभ्यास करने ही से मनुष्य को अपने में जो परिवर्त्तन एवं आनन्द तथा मानसिक शान्ति दीखेगी वह अलेख्य एवं वर्णतातीत है।

हिन्दू और बौद्धों का सम्बन्ध

बौद्ध और हिन्दुओं के सम्बन्ध में स्वामीजी का कहना था कि हिन्दू और बौद्धों में विशेष विरोध और भेदभाव नहीं है उन्होंने अपने एक व्याख्यान में प्रभु मसीह और भगवान गौतम बुद्ध की बड़ी अनोखी तुलना की थी, जिसका भावार्थ यहां प्रकाशित किया जाता है। जीज़स क्राईष्ट यहूदी था और शाक्य मुनि हिन्दू था, बस यही भेद है। यहूदियों ने क्राईष्ट की शिक्षाओं को अस्वीकार नहीं किया, उसको फांसी पर चढ़ा दिया और उसका पूजा करते हैं किन्तु असल भेद यह है कि हम हिन्दुओं ने वर्तमान बौद्ध धर्म और भगवान बुद्ध के उपदेशों को जो समझा है उसको प्रकट कर देना चाहते हैं। *शाक्य मुनि कुछ भी नवीन मत के प्रचार करने के लिये नहीं आये थे। वे ईसामसीह के समान पुराने धर्म को पूर्ण करने के लिये आये थे न कि नष्ट करने के लिये इस भांति स्वामीजी ने महात्मा शाक्यमुनि के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुये आगे कहा है:---"हिन्दू धर्म दो भागों में विभक्त है एक लौकिक दूसरा आध्यात्मिक महात्मागण आध्यात्मिक विषयों पर विशेष रूप से विचार करते हैं।

---

*हाल में अमेरिका के एक अखबार शायद पब्लिक ओपीनियन में तिब्बत के बौद्ध धर्मावलम्बी सभाओं की प्रार्थना छपी है उसमें सन्ध्या मन्त्र और गायत्री ज्यों की त्यों है। इससे बहुत लोग अनुमान करते हैं कि भगवान बुद्ध भी शायद वेदों के प्रचारक थे। लेखक

इस विषय में कुछ जाति पांति नहीं है। भारतवर्ष में उच्च से उच्च नीच से नीच मनुष्य साधु हो सकता है। और इस सम्बन्ध में दोनों जाति समान हैं धर्म में कोई जाति नहीं है सामाजिक स्थिति में साधारणतः जाति है। शाक्य मुनि स्वयं साधु थे उनकी कीर्ति इसी में है कि उन्होंने छिपे हुये वेदों में से सच्चाई प्रकट करने में उदारता प्रकट की थी और उस सच्चाई का समस्त संसार में प्रचार किया था। संसार में वे पहिले ही मनुष्य थे जिन्होंने प्रचार का कार्य किया था। वे प्रथम मनुष्य थे जिन्हें दूसरों को पहले दीक्षा देने का विचार हुआ था।

उनकी कीर्त्ति इसी में है कि सब के प्रति विशेषतः अज्ञानी और दीनों के प्रति उनकी अद्भुत सहानुभूति थी। उनके कुछ शिष्यों में से ब्राह्मण भी थे। जिन दिनों बुद्ध भगवान् उपदेश करते थे, उन दिनों भारतवर्ष में संस्कृत नहीं बोली जाती थी संस्कृत उस समय कुछ पुस्तकों की भाषा थी। बुद्ध के कुछ ब्राह्मण शिष्यों ने उनके कुछ उपदेशों को संस्कृत में अनुवाद करना चाहा था। किन्तु उन्होंने इसका शीघ्र उत्तर दिया :— "मैं गरीबों के लिये और सर्व साधारण के लिये हूं मुझे उनकी भाषा में बोलने दो"। इसके आगे स्वामी जी ने बुद्ध के शिष्यों ने जो वेद विरुद्ध मार्ग ग्रहण किया था, उसका ज़िक्र करते हुये कहा है:—"इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्धधर्म

की भारतवर्ष में स्वभावतः मृत्यु प्राप्त हुई। आज उसकी जन्मभूमि भारतवर्ष में कोई भी स्त्री पुरुष अपने को बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं कहता है"।

इसके विपरीत ब्राह्मण धर्म की भी थोड़ी हानि हुई, उसने यह सुधार करने का उत्साह और प्रत्येक को दान करने की शक्ति खोदी, जो सर्व साधारण को बौद्ध धर्म के कारण प्राप्त हुई थी। जिसके कारण भारतीय समाज इतना उच्च था कि जिसके बारे में एक यूनान का इतिहास वेत्ता लिखता है कि:– "भारतवर्ष में कोई भी आदमी झूंठ बोलता हुआ नहीं दिखलायी पड़ता है, कोई भी हिन्दू स्त्री व्यभिचारिणी नहीं प्रतीत होती है।"

हम तुम्हारे (बौद्ध और ब्राह्मण) बिना नहीं रह सकते है और न तुम हमारे बिना रह सकते हो। विश्वास रक्खो जो प्रथकता हमको दिखलाई है, उससे तुम ब्राह्मणों के दर्शन और मस्तिष्क के बिना ठहर नहीं सकते हो। न तुम अपने हृदय के बिना रह सकते हो। ब्राह्मण और बौद्धों की जुदाई भारतवर्ष के गिराने का कारण हुई है। यही कारण है कि भारतवर्ष में तैंतीस करोड़ भिखारी रह गये हैं और हज़ार वर्ष से विजेताओं का दास हो रहा है। बस अब हमको हृदय से ब्राह्मण धर्म की अद्भुत बुद्धि और उस बड़े स्वामी (बुद्ध भगवान) की पवित्रात्मा तथा मनुष्य बनाने हारी अद्भुत शक्ति को अपनाना

चाहिये"। स्वामीजी के उपर्युक्त कथन से यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि स्वामीजी की प्रबल इच्छा बौद्ध और वैदिकों के भाव दूर करने की थी ;

बौद्ध धर्म के अतिरिक्त सन् १६८० में स्वामीजी ने केलीफ़ोर्निया में एक व्याख्यान, "Chirst the Messenger" दिया था। उस व्याख्यान में ईसा मसीह का अद्भुत चित्र खींचा है।

प्रिय पाठक! आपने स्वामीजी के धार्मिक विचारों को पढ़कर क्या तत्व निकाला है? हमने तो यह तत्व निकाला है कि आज कल जो पारस्परिक धार्मिक कलह बढ़ रहा है, प्रत्येक व्यक्ति की दूसरों के धार्मिक विश्वासों के खण्डन करने की जो रुचि बढ़ रही है, वह दूर हो। धर्म का उद्देश्य संसार में शान्ति का सञ्चार करना और सहनशीलता(Toleration) का प्रचार करना है। इसकी इस समय भारतवर्ष में बहुत भारी आवश्यकता है। जिस समय हम लोगों में एक दूसरे के धर्म सम्बन्धी विश्वासों के प्रति श्रद्धा करने की रुचि उत्पन्न हो जायगी उस दिन भारतीय राष्ट्रनिर्माण में विलम्ब नहीं लगे गा।



पंचम परिच्छेद

नव्यभारत के प्रति सन्देश

स्वामी विवेकानन्द के चाहे राष्ट्रीय, चाहे समाजिक और चाहे धार्मिक विचारों को पढ़ियेगा, उनके अक्षर अक्षर में नव्य भारत के प्रति सन्देश है। भारतीय राष्ट्र निर्माण की प्रबल आकांक्षा है। वाक्य वाक्य में उन्होंने नव्य भारत से यही प्रार्थना की है कि "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" उठो जागो आर अपनी मातृ भूमि की सेवा करो। सेवा भी कैसी नीच भावसे नहीं, बल्कि उच्च भावसे करो। मनुष्य मात्र की सेवा करो; दुःखियों की सेवा और सहायता कर के ही परमपिता परमेश्वर की कृपा का आलिङ्गन करो। मनुष्य मात्र की विचार स्वतन्त्रता प्रदान करो। किसी के विचार और कार्य पर रोक और छाप मत लगाओ। स्वामी जी का यह सिद्धान्त था और सच्चा सिद्धान्त था कि वही समाज कुछ कार्य कर सकता है जिसने विचार स्वातन्त्र्य और कार्य को जहां तक उनसे दूसरों को हानि न पहुंची हो स्वतन्त्रता दी हो। वास्तव में कार्य और विचार स्वतन्त्र्य पर छाप लगाने से मनुष्यों के हृदय से उत्साह की ज्योति क्षीण हो जाती है। सो भारतवर्ष के प्यारे नवयुवकों ! सब से प्रथम इस देश में विचार स्वातन्त्र्य की रक्षा करो। किसी के

विचारों पर छाप मत लगाओ। मत भेद होने पर परस्पर जो कलह की कुटेव पड़ गई है, उसको दूर करो। चाहे जैसा दूसरों से हमारा मत भेद हो पर स्मरण रक्खो जैसा हमको स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचार प्रकट करने और कार्य करने का अधिकार है, वैसा ही दूसरों को है। यह कहां का न्याय है कि हम स्वयं तो अपने विचार स्वतन्त्रता पूर्वक प्रकट करें और कार्य भी मन चाहा करें पर दूसरों के कार्य और विचार पर छाप लगावें। खेद है कि भारतवर्ष में कोई मनुष्य अपने धार्मिक समाजिक और राष्ट्रीय विचारों को प्रकट नहीं कर सकता है। प्रथम सन्देश नव्य भारत के प्रति यही है।

दूसरा सन्देश नव्यभारत के प्रति यह है कि अपने घोंसलों में ही बैठे मत रहो कूप मण्डूक मत बने रहो। बाहर जाकर देखो कि किसो भांति अन्य जातियां उन्नति के निमित्त पग बढ़ा रही हैं। जापान से स्वामी जी ने जो पत्र भेजा था वह अन्यत्र प्रकाशित है नव्यभारत को उस पत्र का कए एक अक्षर अपने हृदय पटल पर अङ्कित करना चाहिये। विचारा जाय तो यह ठीक है कि हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने भी अनुभव प्राप्त करने के अनेक साधनों में से एक देशाटन रक्खा है। अतएव देशाटन से वंचित रह कर अपने मानसिक विचारों पर अपने हाथों से ताला ठोंकना है।

एक पत्र में स्वामीजी लिखते हैं--जापान में मुझे एक मज़ेदार बात मालुम हुई कि जापानी लड़कियां समझती हैं कि यदि वे अपनी गुड़ियों पर सच्चे हृदय से प्रेम करती हैं तो गुड़ियां जीवित हो जाती हैं। जापानी लड़की अपनी गुड़ियों को किसी प्रकार का कष्ट न होने देने में बड़ी सावधानी रखती हैं। मेरा भी ऐसा ही विश्वास है कि सम्मति के योग से हमारे यहां के जो लड़के बड़े हुये हैं वे यदि अपने गरीब छोटे भाइयों पर कुछ न कुछ प्रेम करें तो यह मृतप्राय भारत थोड़े ही समय में आन्दोलन द्वारा जीवित हो जायगा। अहा हा! बिचारे भारतवर्ष! क्या तेरी दृष्टि के सामने ऐसे योगी, योगिनी भी कभी आवेंगी जो जीवन के सारे भोग विलासों को त्याग करके केवल संन्यस्त वृत्ति से क्षण क्षण पर अवनति के गढ़े में गिरने वाले अपने देश भाइयों का उद्धार करने के लिये अपना हाथ आगे करेंगे? सच्ची सहानुभूति और सच्चे प्रेम के बल से दाम्भिक और राक्षसी वृत्ति के लोगों के विचार साफ़ तौर पर ठीक किये जा सकते हैं। इस बात का मुझे इस छोटी सी जीवन यात्रा में भी अनुभव हो चुका है।

एक दूसरे स्थान पर स्वामी जी कहते हैं कि यदि निर्धन लड़का शिक्षा के पास नहीं आ सकता है तो शिक्षा लड़के के पास जानी चाहिये। इस देश में अगणित स्वार्थत्यागी संन्यासी

हैं, जो गांव गांव में धर्म की शिक्षा प्रचार करते हैं। क्या उनमें से कुछ अध्यापक स्वरूप में अपने को संगठन करके, गार्हस्थ्य शिक्षा का प्रचार नहीं कर सकते हैं?" प्यारे नवयुवको स्वामी विवेकानन्द सच्चे संन्यासी थे, इसलिये उन्होने राष्ट्रीय शिक्षा का भार संन्यासियों पर सौंपना चाहा है उन्हें क्या ख़बर थी कि अब साधु, संन्यासियों का भीख के रोट डकारने के अतिरिक्त और कुछ कर्त्तव्य नहीं रहा है। प्यारे नवयुवको! इन कनफटे योगी, वैरागी, साधुओं का भरोसा मत करो। यदि तुम सचमुच शिक्षा प्रचार करके अपने देश वासियों को अज्ञान के फंदे से छुड़ाना चाहते हो तो स्वयं शिक्षा प्रचारक (Educational Missionaries) बनो यदि तुम्हारे हृदय में देश के प्रति सचमुच कुछ भी ममता है तो शिक्षा प्रचार के निमित्त संन्यास धारण करो इस से बढ़कर और पवित्र कार्य क्या हो सकता है कि हम मूढ़ जनों के हृदय से अज्ञानान्धकार को मेंट दें। क्यों भाइयों! क्या तुम अपने देशवासियों में शिक्षा प्रचार के लिये कमर कस कर तैयार हो। स्वामी जी का यह भी सन्देश था कि भारतवर्ष की बिना ध का आसरा लिये कदमापि उन्नति नहीं हो सकती है। पश्चिमी देशों में भले ही राजनीति प्रधान रही हो। पर भारतवर्ष म राजनीति नहीं बल्कि धर्म प्रधान है। धर्म का नाम सुनकर पाठक! सहमिये नहीं, न चौंकिये धर्म कोई सङ्कीर्ण

पदार्थ नहीं है। क्या तुम समझते हो कि आत्मा विभु है अथवा अणु, वृक्षों में जोव है या नहीं ऐसे विषयों पर मग्ज़ पच्ची करना धर्म है ? कदापि नहीं। ये विषय तो विद्वानों के विद्या विनोद के लिये और दार्शनिक विचारों में रमने के लिये हैं। धर्म का अर्थ है, दुर्बलों की रक्षा करो, बलवानों का अत्याचार उन पर मत होने दो। न्याय और सत्य की सदैव शरण ग्रहण करो। अज्ञानियों के हृदय में ज्ञान की ज्योति का प्रचार करो। मूढ़ जनों को चेतावनी दो कि वे उस महा प्रभु की मङ्गलमय सृष्टि में अपने स्वत्वों को पहचानें अपने अधिकारों को मत नष्ट होने दो, उनकी रक्षा करो, अपने कर्तव्य पालन में डटे रहो, जीवन संग्राम में सम्हल सम्हल कर अपने पग बढ़ाओ बस धर्म का यही तत्व है इस गूढ़ तत्व के भूल जाने से ही तो हमारी यह अधोगति हुई है। सुतराम् लोग धर्म का मर्म न जानने के कारण ही धर्म को बुरा कहते हैं। आत्म रक्षा तथा देश रक्षा से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है।

स्वामी जी ने अमरीका से जो अपने एक मित्र को पत्र लिखा था उसमें उन्होंने अपने देश के दरिद्र और पतितों की दशा सुधार को ही परम धर्म बतलाते हुये यों लिखा है:—

"यहां के जेलों का प्रबन्ध इतना अच्छा होता है कि उसका यदि वर्णन किया जाय तो तुम्हें सच भी न मालूम होगा, वह प्रत्यक्ष देखना ही चाहिये। अमरीका में बिल्कुल निरक्षर कैदियों

को भी कुछ न कुछ व्यवसाय सिखाया जाता है और उन्हें बड़ी ममता से रखते हैं। इस कारण उनकी चित्तवृत्ति में इतना अन्तर पड़ जाता है कि फिर वे बहुधा जेलखाने का मुख नहीं देखते। परन्तु हमारे करोड़ों निरक्षर भाइयों की आज क्या दशा है? इन दुर्बल लोगों के विषय में हमें कैसा जान पड़ता है इसका केवल विचार करने ही से शरीर पर रोयें खड़े हो जाते हैं। बतलाओ भला आज कौन सा मार्ग खुला है जिससे वे विचारे अपनी दशा सुधार सकें? वे चाहे जितना कष्ट सहें, चाहे शरीर क्यों न खपा डाले परन्तु उन ग़रीबों की उन नीच स्थिति के लोगों की, उन पतित जनों की दशा में क्या आज रत्ती भर भी फ़र्क पड़ने की आशा है। उनका न कोई मित्र है न कोई सहारा है। उनके लिये सब दिन समान हैं। दुष्ट रीति रिवाज़ों ने, अदूर दर्शी समाज ने, आज न जाने कितने दिनों से उन्हें नीचे को ही दाबने का प्रयत्न जारी कर रक्खा है। पर इस दाब का मूल अब तक उन्हें नहीं मिला। सच पूछिये तो वे यह भी भूल गये हैं कि हम भी मनुष्य ही हैं और इसका परिणाम? इसका परिणाम दासत्व। कुछ विचारवान् लोगों के मन में यह बात कुछ वर्ष पहले ही आ गई थी; पर दुर्भाग्य की बात तो यह है कि इस सब अनर्थ का कारण उन्होंने आर्यधर्म बतलाया। उन्होंने समझा कि आर्यधर्म--जो आज जगत् में सब धर्मों से बड़ा धर्म है, का लय

होना ही हमारी दशा सुधारने का एक मात्र उपाय है। पर मित्र! तुम खूब ध्यान में रक्खो कि इस में धर्म की कुछ भी लाग नहीं है। इस के विरुद्ध आर्यधर्म तो यही कहता है कि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"। इस अनर्थ के कारण पूछिये तो आर्यधर्म के तत्वों को व्यवहारिक स्वरूप देने में लापरवाही की गई और सच्ची सहानुभूति तथा प्रेम की ओर ध्यान नहीं दिया गया। परमेश्वर ने एक बार बुद्ध रूप से इस भूमि में अवतीर्ण होकर स्वयं अपने आचरण द्वारा तुम्हें यह दिखला दिया कि प्रेम का स्वरूप कैसा होना चाहिए। अत्यन्त दरिद्र, अत्यन्त विपद्ग्रस्त और अत्यन्त पापी या पतित लोगों के साथ भी तुम्हारा कैसा बर्ताव होना चाहिये सो उन्होंने तुम्हें सिखला दिया; पर इस शिक्षक को तुम ने पीठ ही दिखलाई। तुम, कान होने पर भी बहरे, और आँखें होने पर भी अंधे बने। यहूदी लोग जिस प्रकार क्राइस्ट गुरु का उपहास करने के कारण शापग्रस्त होकर, पृथ्वी भर में भटकते फिरे, और कहीं उन्हें जगह नहीं मिली, उसी प्रकार, ऐसे अनेक महात्माओं का अनादर करके तुम ने यह कर्म-दशा अपने ऊपर खींच ली है। चाहे जो आवे और चाहे जस रीति से तुम्हें फिरावे। अपनी ऐसी दशा तुमने अपने हाथों ही कर ली है। अरे पाषाणहृदय पुरुषों! तुम्हें यह नहीं जान पड़ता कि तुमने आज तक जो अत्याचार किया उसी के कारण तुम अब गुलाम

बने हो। यह तुम नहीं जानते कि अत्याचार और दासत्व एक दूसरे के सगे भाई हैं और ये सदा सहचारी होते है।

कदाचित् तुम को स्मरण होगा कि मैं जब पांडुचेरी में था तब एक पण्डित से विदेश-यात्रा के विषय में बातचीत हुई थी। उसके वे पशु-तुल्य हाव-भाव और वह "कदापि नहीं ?" वचन तो मैं जन्म भर नही भूलूंगा ? ये समझते हैं कि भारत ही सारा जगत है और बस हमी जगत में श्रेष्ठ हैं ? पर इन अरण्य-पण्डितों को कैसे मालूम हो कि इस सुन्दर भूमि पर तीस करोड़ कीड़े जो आपस में अत्याचार का खेल मचा रहे हैं उसे देख कर सारा संसार आज हंस रहा है ? अब यह सब दशा बदलने के लिये हमें कमर कसना चाहिये। आर्य धर्म, और उसी का प्रत्यक्ष स्वरूप जो बौद्धधर्म है उसका आचार हमें वेग से शुरू करना चाहिए। अपने कार्य की पवित्रता पर अपने हृदय में पूर्ण विश्वास, ईश्वरीय सहाय के विषय में पूर्ण विश्वास और दरिद्र तथा विपद्ग्रस्त भाइयों को मुक्त करने के लिए चाहे जो कर डालने का असीम साहस रखने वाले वीर पुरुष हमें आज चाहिये। आज तक नीच जाति कहला कर अत्याचार सहनेवाले अपने भाइयों को उन की उस दशा से मुक्त करना, उन्हें सब प्रकार से मदद करना और सर्वत्र समभाव उत्पन्न करना ही जिन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य मान रखा रखा है ऐसे धार्मिक मनुष्यों की आज

हमें ज़रूरत है। कुछ ऐसे नवयुवकों की प्रथम आवश्यकता है जो त्यागी हो, जो अपने जीवन को दूसरे के कल्याण हित त्यागने केलिये तत्पर हों। ऐसे नवयुवकों की शिक्षा केलियेमैं एक मत स्थापित करना चाहता हूं। ये सन्यासी प्रत्येक घरके द्वार पर जाकर मनुष्यों को उनकी शोचनीय दशा का ज्ञान करावें। साधारण भाषा में धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों को समझावे, उन्हें उनकी वास्तविक दशा चेता दे और कहें "भाइयो ? उठो, जागो, कब तक सोते रहोगे। सब को यह जता दो कि धर्म में उनका उतना ही अधिकार है जितना कि ब्राह्मणों का। चांडाल तक को वे इसी मन्त्र की दीक्षा दें। यदि तुम यह नहीं कर सकते तो तुम्हारी शिक्षा को धिक्कार है। तुम्हारे वेद एवं वेदान्त के अध्ययन को धिक्कार है। शक्ति अपने आप तुम्हारे पास काम करते २ आ जावेगी। परोपकार के लिये किया हुआ थोड़ा सा भी कार्य आन्तरिक शक्ति को जागृत कर देता है। परोपकार का केवल विचारना ही हृदय में सिंह की शक्ति उत्पन्न कर देता है। मैं तुम सब से सदा बहुत स्नेह रखता हूं—अतएव मैं चाहता हूं कि तुम सब दूसरों के हित का काम करते हुये अपने जीवन को त्यागो।

तुम सब जहां कहीं प्लेग हो अकाल हो अथवा मनुष्य विपत्ति में फंसे हों वहां जाओ और उनके कष्ट का निवारण

करो। यदि इस प्रयत्न में तुम्हारी मृत्यु भी हो जावे तो उससे क्या ? तुम जैसे कितनेही रात दिन कीड़ोकी तरह उत्पन्न होते और मरते रहते हैं ? परन्तु संसार में इससे क्या अन्तर पड़ता है। मृत्यु अवश्यम्भावी है, परन्तु एक आदर्श के लिये मरना भला है।

इस सन्देश का घर २ प्रचार करो और तुम स्वयं इससे लाभ उठाओ। प्यारे नवयुवको ! तुम पर ही नव्य भारत का भार है। मुझ को तुम्हें आलस्यमय जीवन व्यतीत करते हुये देख कर बड़ा खेद होता है। कार्य करो ! कार्य करो !! मृत्यु का समय सन्निकट चला आ रहा है !!! आलस्य को त्यागो, यह मत विचारो कि समय पर सब हो जावेगा। कोई तुम को शिक्षा नहीं दे सकता, कोई तुम को धर्मिक नहीं बना सकता। तुम्हारा आत्मा के सिवाय अन्य गुरु नहीं इसी लिये भगवान कृष्ण अपनी बंसी की मधुर ध्वनि के साथ गीता में गा रहे हैं कि "आत्मैव आत्मनो गुरुः" यह कभी न विचारो कि तुम निर्धन हो। धन शक्ति नहीं है वरन पुण्य और पवित्रता ही शक्ति है।

अस्तु; धैर्य्य न छोड़ना। "कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन" यह भगवान कृष्ण का वाक्य स्मरण करो और काम के लिए कमर कसो। मुझे तो जन्म भर यही काम करने की आज्ञा हुई है। सांसारिक सुख किसे कहते हैं, इसकी तो

मुझे कल्पना भी नहीं है। मेरे भाई बन्धु और इष्ट मित्र भूख से, मेरी आंखों देखते, तड़फड़ा कर मर गये; जिनकी भलाई के लिये मैं खपा उन्होंने उलटी मेरी हंसी की; मेरे विषय में अविश्वास उत्पन्न किया; पर मित्र! यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ। अत्यन्त आपदावस्था एक बड़ी पाठशाला है। ऐसा एक भी साधु अथवा तत्ववेत्ता नहीं मिलेगा जो इस पाठशाला में न पढ़ कर तैयार हुआ हो। इस शिक्षा के लाभ को जानना चाहोतो ये हैं कि इससे अन्तःकरण में सच्ची सहानुभूति की प्रेरणा होती है और मनोधैर्य आता है; पर सब से बड़ा लाभ यह है कि प्रचण्ड शक्तियों के आघात से चाहे इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बात की बात में, चकनाचूर हो जाय; तथापि न डिगनेवाली असीम इच्छाशक्ति भी इसी शिक्षा से उत्पन्न होती है। जिन्होंने मेरा उपहास किया उन के विषय में मेरी बिलकुल ही द्वेष बुद्धि नहीं। वे तो बुद्धिमत्ता की दृष्टि से अब तक छोटे बच्चे हैं! लोग उन्हें बड़े और चतुर भले ही कहा करें पर इस से सच्ची बड़ाई और चतुराई क्या थोड़े ही मिल सकती है? इन्हें अपनी उंचाई पर से जो क्षितिज दीख पड़ता है उसके आगे का जगत् उन्हें नहीं मालूम है। इन के महत् कर्त्तव्य देखो तो बस इतने ही कि खाओ पीओ, खूब चैन उड़ाओ और मनुष्यगणना में अधिकता करो? इन आनन्दी प्राणियों को इस के आगे देखने की आवश्यकता

नहीं रहती। हज़ारों वर्षों से अन्याचार के नीचे पिस कर जो निःसत्व, दरिद्र और तेजहीन हो रहे हैं ऐसे हमारे ही भाइयों की मचाई हुई चिल्लाहट से इन को निद्रा भंग नहीं होती और न इन के चैन में बाधा उपस्थित होती है। प्रत्यक्ष परमेश्वर के ही अनन्त स्वरूप, पर हजारों वर्षों की अत्याचारी रीतियों से वे आज भारवाहक जानवर कैसे बन गये हैं और उन्हें ऐसे जीने से मरना क्यो क़बूल हो रहा है? इसका विचार भी इन बड़े कहलाने वाले लोगों में स्पर्श नहीं करता। तथापि इसका पूर्ण विचार जिन्होंने किया है, जिन्हें इस विषय में रामबाण मात्रा मिल गई है और यह कूट प्रश्न हल करने के लिये जिन्होंने कमर कस ली है ऐसे महात्मा भी जन्म ले चुके हैं। अतएव, मित्र! जो इन उपायों का चिन्तन करे वे ऐसे क्षुद्र कीटकों की चिर्नाचनाहट की ओर ध्यान ही न दें यही ठीक हैं।

तुम आर्य धर्म में पैदा हुये हो। सर्व समता का तत्व जिस में इतनी उत्तम रीति से बताया है ऐसा धर्म आर्यधर्म को छोड़ कर पृथ्वी की पीठ पर और एक भी नहीं है। पर ग़रीब बिचारे पीछे पड़े हुए वर्ग पर लगातार अत्याचार करने वाला धर्म भी आर्यधर्म को छोड़ कर दूसरा नहीं है। पर, भैया रे! इस में धर्म का कोई दोष नहीं-किन्तु धर्म के नाम पर जिन्होंने अत्याचार करने वाले रूढ़िरूप शास्त्रास्त्र निर्माण किये उन भोंदू लोगों का ही यह

सब प्रताप है।

अब तुम्हें एक और विशेष बात बतलानी है, सो यह कि ऐसे काम में श्रीमान् कहलाने वालों पर बिलकुल ही विश्वास न करना ये लोग बिलकुल ही मृतपिण्ड मिट्टी के धोंधे होते हैं। इस काम के लिये तुम्हारे समान ग़रीब हलके दरजे के परन्तु विश्वसनीय मनुष्य योग्य हैं। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखो और जो कुछ करना हो सो सरल खुले मार्ग से करो उस में आड़ परदा या लांप-झांप नहीं चाहिये। ग़रीब पर सच्चा प्रेम रखो, और मदद की आवश्यकता भी होगी तो वह परमेश्वर की ओर से मिलेगी और फिर मिलेगी इस में कुछ भी सन्देह न रखना। यही बोझा हृदय में और यही विचार सिर में सदैव रखकर आज बारह वर्ष से मैं भटकता हूं। अपने देश के श्रीमान् और बड़े कहलाने वाले लोगों से मैं मिला और अब अन्त में इस परदेश में मदद की भीख मांग रहा हूं। मुझे विश्वास है कि अन्त में वह परमात्मा मेरी सहायता करेगा, इस में कुछ भी फ़र्क नहीं पड़ सकता। यदि कदाचित् भूख और शीत से इस देह का यहीं पात हो गया, तो हे भारत के मेरे तरुण मित्रो! मैं तुम्हारे लिए सम्पत्ति छोड़ जाऊंगा। दीन, दुर्बल निराश्रित और अत्याचार के नीचे दबने वाले मेरे बान्धवों के सुख के लिये तुम अपना जीवन दे दो। तुम विसरात के नाते से मेरे इसी

वचन का निर्वाह मेरे बाद करो। जाओ! इस क्षण उस पार्थ-सारथी के मन्दिर को जाओ और मेरे वचन के निर्वाह करने की शपथ करो। ऐसा करने से वह अशरण-शरण, जिस ने गोकुल में गोपालों की रक्षा की, जिस ने बड़े शूद्र गुह को निर्भरालिंगन देने में आगा पीछा नहीं किया, जिस ने बुद्धावतार में वेश्या के निमंत्रण को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर के उस का उद्धार किया, जिसने समाज में अत्यन्त तुच्छ समझे जानेवाले भक्तों के लिये अवतार लिये, जिस ने उनके संकटों में दौड़ कर उन की रक्षा की, वही भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी सहायता करेंगे। तो फिर प्रति दिन अधिकाधिक अवनति के गर्त्त में गिरने वाले अपने तीस करोड़ भाइयों का उद्धार करने की शपथ तुम कहते हो न?

यह एक दिन का काम नहीं है, और यह मार्ग चारों ओर भयङ्कर झाड़ झंखड़ों से खूब भरा हुआ है। पर डरो मत कार्य्य में लगो। तुम्हारे पीछे तुम्हारी रक्षा के लिये देखो यह पार्थ-सारथी आयुध सहित खड़ा है। अच्छा तो फिर लो उस का नाम, और हज़ारों वर्षों से जो यह पापों की पर्वत-राशि संचित हुई है उस में आग लगा दो, यह अभी जल कर ख़ाक हो जायगी। आओ आगे! देखते क्या हो! काम बहुत बड़ा तथा बिकट और अपना सामर्थ्य अत्यन्त अल्प है, इसलिये डिगो मत। हम सब ज्ञान के पुत्र और भग-

वान् के बालक हैं। "यत्र योगेश्वरः कृष्णो, तत्र श्रीर्विजियो भूतिः"।

इस प्रयत्न में हजारों पतन होंगे, पर अन्य हज़ार उन की जगह लेंगे। रोग क्या है, इस का निदान हुआ है और चिकित्सा भी तुम्हें मालूम हो चुकी है। अब दृढ़ विश्वास रख कर चिकित्सा में लगो; पर फिर एक वार बतलाये देता हूं कि बड़े लोगों की मदद की अपेक्षा मत रखो और कलुषित हृदय से की हुई उन समाचार पत्रों की समालोचनाओं की भी मत परवाह करो। घाम (धूप) न देखो, बादल न देखो, भूख न देखो, प्यास न देखो, अधिक क्या, यह देह भी अपना मत समझो। इसे परमेश्वर के कार्य्य में अर्पण करो। पीछे मत देखो। हमारे पीछे पीछे कोई आता है या नहीं, यह विचार भी न लाओ। बराबर आगे—आगे—आगे बढ़ो।"

सब से बढ़कर नव्यभारतवर्ष के प्रति स्वामीजी का यह सन्देश है:--"हे, भारत मत भूल, तेरा आदर्श देवियां, सीता सावित्री और दमयन्ती हैं। मत भूल तेरे आदर्श-देव त्यागियों के त्यागी उमानाथ शङ्कर हैं। भारतवासियो! स्मरण रहे तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन, तुम्हारा जीवन इन्द्रियजनित सुख के लिये नहीं है, न यह सब किसी व्यक्ति विशेष के सुख के साधन हैं। इस बात को मत भूलो कि तुम अपने जन्म से ही माता के लिये बलिदान किये गये हो। हे वीरो! साहस धारण

करो और इस बात का अभिमान करो कि तुम हिन्दुस्तानी हो। अभिमान पूर्वक कहो मैं भारतवासी हूं। प्रत्येक भारत वासी मेरा भाई है। चाहे फटे पुराने चीथड़े पहने हो तुम उच्च स्वर से कहो कि भारतवासी मेरे भाई हैं, भारत वासी मेरे जीवन हैं, भारतवर्ष के देवी और देवता मेरे परमेश्वर हैं। भारत वर्ष का समाज मेरे बालपन का पालना है। मेरी युवावस्था की विलास—वाटिका है। मेरे बुढ़ापे का एकान्त स्थान है। कहो प्यारे भाईः—"भारतभूमि" मेरे लिये सब से बड़ा स्वर्ग है, भारत माता की भलाई में मेरी भलाई है और रात्रि दिन प्रार्थना करो—तू जगत की माता है, तू ही स्वामी है मुझे वीरता प्रदान कर, तू शक्ति की माता है, मेरी कायरता दूर कर और मुझे मनुष्य बना" बस यही नव्य भारत के प्रति स्वामी जी का सन्देश है।

प्यारे भाइयो ! चेतो अब कब तक अज्ञान रूपी निद्रा की गोदमें करवट बदलते रहोगे। प्यारे नवयुवको भारतमाता की मनोहर सन्तानों !! इस देशकी एक मात्र आशा-लतिकाओं !!! अब अपना जीवन आदर्श बनाओ अपने चरित्र का आदर्श संगठन करो अपनी मातृ भूमि को भी आदर्श बनाओ जिस दिन तुममें आदर्श नर नारी उत्पन्न होंगे उसी दिन तुम्हारी मनुष्य समाज में परिगणना होगी। बस यही सन्देश नव्य भारत के प्रति है। परमात्मा हमारे नवयुवकों को इतना

आत्मिक बल दें कि उनको अपने पर और अपने देश पर दृढ़ विश्वास हो। यही हमारी हार्दिक इच्छा है। प्यारे मित्रो ऋषि मुनियों के इस वाक्य को मत भूलो कि :—

"'उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत" ।

॥ समाप्तम् ॥